बुद्ध-मीमांसा

अर्थात्

बुद्ध और वैदिक धर्म से उनका संबंध

(इसमें उद्धरणों-सहित प्रामाण्य ग्रंथों और विद्वानों के विचारों
का एवं मूलवचनों-सहित टिप्पणियों का संग्रह इस
विचार से किया गया है जिससे भविष्य में बौद्ध-
धर्म पर लिखे जानेवाले किसी निबंध के
लिए सामग्री प्रस्तुत हो सके)

(सचित्र)

संपादक
श्रीस्वामी महाराज योगिराज,
महंत बुद्धगया।

रचयिता
योगिराज-शिष्य मैत्रेय

अनुवादक
विश्वनाथप्रसाद मिश्र,
बी० ए०, साहित्य-रत्न

प्रकाशक
धर्मदत्त त्रिपाठी,
बाँसफाटक, काशी।

प्रथम संस्करण
व्यासपूजा, १९९१
मूल्य २)

मुद्रक—
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी।

यह

भगवान् बुद्ध

को उसी प्रकार प्रिय हो

जिस प्रकार बच्चे की अर्थहीन

तुतली बोली माँ को

प्रिय होती है।

विश्व-भर में

छाए हुए

अपने

बौद्ध-बंधुओं

को

समर्पित

प्राक्कथन

लोक में यह भावना बहुत दिनों से जमी हुई है कि वेद-निंदा के ही कारण भगवान् बुद्ध की ओर से भारत की जनता विरक्त हो गई है। महात्मा तुलसीदासजी अपनी 'दोहावली' में लिखते हैं :—

अतुलित महिमा वेद की, 'तुलसी' किए विचार।
जो निदंत निंदित भयो, विदित बुद्ध-अवतार॥

भारत में ईश्वर की निंदा या उसकी सत्ता का अस्वीकार कोई वैसा अपराध नहीं रहा है, जैसा वेद को न मानना। 'नास्तिक' भी वे ही कहे जाते हैं जो वेद को नहीं मानते। इस संबंध में यह विचारणीय प्रश्न था कि भगवान् बुद्ध की पूजा का विधान धार्मिक ग्रंथों में फिर क्यों हुआ? इन्हीं सब बातों का स्पष्टीकरण श्रीमैत्रेय महोदय ने अपनी इस पुस्तक में किया है।

'बुद्ध-मीमांसा' के दो खंडों में प्रकाशित हो जाने के पश्चात् श्रीमैत्रेय महोदय ने इसी विषय को थोड़ा और साफ करने के विचार से 'बौद्धधर्म-विषयक सत्यता' शीर्षक एक निबंध भी लिखा था, जो पहले 'यूनिवर्सल रेलीजन' (Universal Religion) में प्रकाशित हुआ था और

पीछे पुस्तकाकार भी निकाल दिया गया था। यह निबंध प्रस्तुत पुस्तक में तृतीय खंड के रूप में जोड़ दिया गया है, जिससे हिंदी के पाठकों को सब सामग्री समन्वित रूप में ही पढ़ने को मिल जाय।

पुस्तक का अनुवाद कोई पाँच वर्ष पूर्व से किया पड़ा था, और अब इतने दिनों बाद शीघ्रता के साथ छपने के कारण बहुत सावधानी रखने पर भी यदि कहीं कोई गड़बड़ी हो गई हो तो संभव है। उसके लिए विनीत भाव से क्षमा माँगने के अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता है।

हिंदी के पाठकों के सामने ऐसी उपयोगी पुस्तक रखते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। मुझे आशा है, हिंदी-जगत् इसको वैसे ही अपनाएगा जैसे इसे अँगरेजी में अपनाया गया है।

व्यासपूर्णिमा, १९९१
ब्रह्मनाल, काशी।
—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

भूमिका

(बुद्धगया के श्रीस्वामी महाराज योगिराज द्वारा लिखित)

हिज हाइनेस ऑनरेबुल महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह बहादुर, दरभंगा-नरेश* की प्रेरणा से मैं यह पुस्तक जनता की भेंट कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि वे लोग इसे प्रेमपूर्वक अपनाएँगे। यह ग्रंथ समस्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का अंग है और विश्वधर्म का सान्निध्य प्राप्त करने के विचार से प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रस्तुत करने में वैदिक एवं बौद्ध-साहित्य की देशी अथवा विदेशी संपूर्ण परंपरा का अनुसंधान किया गया है, जो इस ग्रंथ का पारायण कर जाने पर ज्ञात होगा।

मुझे इसका उल्लेख करते हुए अतीव आनंद प्राप्त हो रहा है कि इसके लेखक मैत्रेय उसी गौतम-गोत्र के हैं जिसकी वंश-परंपरा का लगाव न्यायशास्त्र के प्रवर्तक वैदिक ऋषि गोतम से है। बौद्धधर्म के संस्थापक और प्रस्तुत ग्रंथ के विषयभूत गौतम बुद्ध भी उन्हीं महर्षि गोतम के वंशज थे।†

---

* स्वर्गीय। † अँगरेजी-अनुवाद का उल्था।

उपोद्घात

हिंदुओं और बौद्धों में चिरकाल से जो पार्थक्य चला आ रहा है उसके संबंध में बुद्धगया के श्रीस्वामी महाराज योगिराज से भारत के राजाओं और जनता ने बारंबार यह आग्रह किया कि आप कोई ऐसा प्रयत्न करें जिससे यह पार्थक्य दूर हो जाय। अतएव यह उपयुक्त होगा कि महाराज योगिराज के आदेश से उन्हीं के निरीक्षण में निर्मित की गई प्रस्तुत पुस्तक दोनों धर्मों के प्रतिनिधियों के समक्ष इस विचार से रखी जाय जिससे दोनों पक्षों में सामंजस्य एवं शांतिपूर्ण सहयोग की स्थापना हो सके। इससे बढ़कर उत्तम कार्य और क्या हो सकता है।

संसार के सभी मनुष्यों का इस विषय में मतैक्य है कि धर्म की छोटी-छोटी बातों के संबंध में होनेवाले लड़ाई-झगड़े नितांत निरर्थक हैं, क्योंकि विविध प्रकार के सभी धार्मिक संप्रदायों का मूलोद्देश्य एक ही है। जब तक मानव की बुद्धि उसके शरीर द्वारा जकड़ी एवं सीमाबद्ध है तब तक वह अनंत के प्रश्नों तथा संसार की समस्याओं को सुलझाने योग्य नहीं है; किंतु विज्ञान एवं दर्शन ने—जो आज भी अपने

शैशव में ही हैं—तुलना करने पर अजेया बुद्धि की शक्ति एवं भौतिक शरीर की निर्बलता के प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। इसलिए मानव का परमावश्यक कर्तव्य विकास की ऊँची कोटि में पहुँचने का मार्ग ढूँढ़ निकालना है (जो विज्ञानानुसार अभी ढूँढ़ा जानेवाला है और रहस्योद्घाटन के अनुसार ढूँढ़ा जा चुका है)। उक्त कोटि में शरीर बुद्धि की अधीनता में आ चुका है। जातियों के उत्थान से संबंधित यह कर्तव्य वही है जो विविध धार्मिक संप्रदायों का रूप धारण करता है। ये सभी धार्मिक संप्रदाय ऊँची कोटिवाले जीवों (देव, सेरफ, मलेख, फ्रावाँशो, ऐंजिल, गॉड) के साथ मनुष्य के कुछ मान्य व्यवहारों से प्रारंभ होते हैं।

इस पुस्तक का प्रथम खंड ११७ पृष्ठों में समाप्त होता है। द्वितीय खंड में कतिपय वचनों का उद्धरण है, जो पहले 'बुद्धगया-माहात्म्य' नाम्नी पुस्तिका में प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त पुस्तिका का प्रणयन स्वयं महाराज योगिराज ने किया था और उसे बंगाल फोर्ट विलियम हाईकोर्ट जुडिकेचर के ऑनरेबुल जस्टिस स्वर्गीय डा. सर गुरुदास बनर्जी के-टी., एम. ए., एल्-एल्. डी., पी-एच. डी. महोदय ने समस्त हिंदुओं

के लिए एक बहुमूल्य संकलन बतलाया था। वह मूलरूप में धार्मिक गुरुओं, विदेशी अधिपतियों, भारतीय रजवाड़ों और प्रतिनिधि-विद्वानों के बीच बाँटने के लिए मुद्रित हुई थी।

यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तक की सभी सुदृढ़ समालोचनाएँ लेखक के लिए सहायक होंगी, क्योंकि उसने अपनी शक्ति-भर सत्यता को दृष्टि में रखकर विषय-सामग्री एकत्र की है। इस विषय में लेखक से लिखा-पढ़ी महाराजाधिराज दरभंगा की कोठी, चौरंगी, कलकत्ता के पते से की जा सकती है।

—मैत्रेय

बुद्धगया के योगिराज का शिष्य।

विषय-सूची

प्रथम खंड

तृतीय खंड
बौद्धधर्म-विषयक सत्यता

संकेत-विवरण

'देखो टिप्पणी' का अर्थ यह है कि पुस्तक के अंत में अत्यंत परिश्रम से जो मूलवचनों का संग्रह किया गया है, उसे पाठक देखें।

हाइफन (-) के द्वारा अलग किए गए अंकों से पुस्तक के उपविभाग सूचित किए गए हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद १-१-२ का तात्पर्य है—ऋग्वेद, प्रथम मंडल, प्रथम सूक्त, द्वितीय मंत्र। इसी प्रकार सभी स्थलों पर समझ लेना चाहिए।

बुद्ध-मीमांसा

(प्रथम खंड)

वंदना

अपरिमित शोभा धारण करनेवाले, विधाता को भी जीतनेवाले, तम के हरण करने में सूर्य का भी अभिभव करनेवाले, ताप के दूर करने में चंद्रमा को भी विजय करनेवाले एवं अपना उपमान न रखनेवाले बुद्ध की यहाँ पर वंदना की जाती है[1]।

---

१ अश्वघोष-कृत बुद्ध-चरित, १-१ [देखो टिप्पणी]।

प्रस्तावना

सनातन अथवा वैदिक धर्म

धर्मों के इतिहास में सनातनधर्म अथवा पुरातन वैदिक धर्म के चिह्न प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होते हैं। इस प्राचीन धर्म का संबंध न तो भौतिक शरीर से है और न बुद्धि से। यह एक तीसरी ही वस्तु का ज्ञाता है जिसका नाम आत्मा है और भौतिक शरीर तथा बुद्धि दोनों ही जिसके आविर्भाव हैं[1]। इसके समस्त कार्य-व्यापार केवल उसी आत्मा का सम्यक् ज्ञान संपादित कराते हैं[2]। इसका सिद्धांत है कि केवल उसी के सम्यक् ज्ञान से भौतिक शरीर और बुद्धि के भी संपूर्ण रहस्य उद्घाटित हो

वैदिक धर्म ; इस धर्म के तत्त्व— (१) आत्मा

---

१ यही समस्त उपनिषदों का मूल विषय है। प्राचीन काल में प्लेटो की और आधुनिक काल में हीगल की शिक्षा का विषय भी यही है। देखो Sully's 'Human Mind,' द्वितीय भाग, परिशिष्ट, पृष्ठ ३६९ और Green's 'Prolegomena to Ethics,' निबंध ३३। [देखो टिप्पणी]।

२ बृहदारण्यकोपनिषद्, ४-५-६ ; मुंडकोपनिषद्, २-२-५।

सकते हैं[१], अन्य किसी उपाय द्वारा नहीं। यह आत्मा को एक शक्तिशाली पदार्थ मानता है। आत्मा की उस शक्ति का नाम इसने इच्छा रखा है[२]। यह उस अजेया शक्ति के बल में विश्वास करता है और भौतिक शरीर एवं बुद्धि को अपेक्षाकृत निर्बल मानता है[3]। इसके अनुसार इच्छा

(२) शक्ति

---

१ छांदोग्योपनिषद् ६-१-२ ; बृहदारण्यकोपनिषद् ४-५-६। मिलाओ बाइबिल : Job XXXII, 8 ; Proverbs XX, 27 ; Ecclesiastes XII, 7 ; John IV, 24 ; I Corinthians XIV, 2। [देखो टिप्पणी]।

२ शापेनहावर ने योरप की नवीन आत्म-विद्या में इस शब्द को ग्रहण कर लिया है। (Weber : 'History of philosophy,' पृष्ठ ५५६, पाद-टिप्पणी)। यह इच्छा वही है जिसे वेदों और तंत्रों में शक्ति या माया कहा गया है। यही अवेस्ता में कथित द्रुज है । (Smith's 'Cyclopaedia of Names,' 'अहुर मज्द' शब्द की व्याख्या में)। [देखो टिप्पणी]।

३ मिलाओ Dr. Charles Mackey's 'Memoirs of Extraordinary Popular Delusions,' द्वितीय संस्करण,— आकर्षक पदार्थों पर लिखित अध्याय (अंत में)। स्तोत्रकार (Psalmist) के इन शब्दों में भी कि हम "भय और आश्चर्य के साथ बनाए गए हैं," शरीर और बुद्धि पर इच्छा की इस

क्रमशः शरीर एवं बुद्धि पर विजय प्राप्त करती है और अंत में शुद्धात्मा को अधम शरीर एवं अशुद्ध बुद्धि के समस्त वंधनों से छुटकारा मिल जाता है। इस छुटकारे को यह मुक्ति (विदेह-मुक्ति ; निर्वाण)[1] कहता है। यह विकास-क्रम के अनुसार मनुष्य से ऊँची कोटि के जीवों (भूत, प्रेत, स्वर्गदूत, देवता आदि)[2] की स्थिति का ज्ञाता है। ये ऐसे जीव हैं जिनमें इच्छा-शक्ति यहाँ तक प्रवल हो जाती है कि शरीर (और भौतिक पदार्थ मात्र) भली

(३१) देवता

प्रलोभिनी शक्ति का दृष्टांत मिलता है (बाइबिल : Psalms CXXXIX, 14)।

१ श्रीशंकराचार्य के वेदांत-दर्शन का भी यही विषय है। बुद्ध के बहुत पहले उपनिषदों और योगवासिष्ठ में 'निर्वाण' शब्द प्रयुक्त हो चुका है। इसे भ्रम से बौद्धकालीन शब्द मान लिया गया है। देखो भगवद्गीता में 'ब्रह्म-निर्वाण' शब्द (२-७२)।

डाक्टर सैवेरी 'Book of Helth' की भूमिका में इस विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं और सेंट पाल के इस कथन का समर्थन करते हैं कि शरीर आत्मा के अधीन रहता है और अंत में यह परिवर्तित भी हो जायगा (मालकम मॉरिस द्वारा संपादित 'Book of Health' का आरंभिक अध्याय)।

२ तैत्तरीयोपनिषद् , २-८। मिलाओ बृहदारण्यकोपनिषद्,

भाँति बुद्धि के वश में आ जाता है और इस प्रकार आत्मा को एक प्रकार की आंशिक मुक्ति (जीवन्मुक्ति) मिल जाती

४-३-३३ और बाइबिल भी, Daniel, VII, 10 ff. [देखो टिप्पणी]। देवलोक-निवासी जीवों के गण का नाम है 'उच्च-कुल' (Ephesians III, 15) और इन्हीं के संबंध से ईश्वर का नाम है 'गणाधीश' (Zachariah VIII) कुरान-शरीफ भी कहता है कि खुदा फिरिश्तों को दूत, अभिभावक, नेता और मनुष्यों के लिए रहस्योद्घाटक के रूप में नियुक्त करता है (कुरान : सूरा : १२-१२ ; १६-२ ; २५-१ ; ४२-५१)। मुहम्मद साहब ने स्वयं इस बात की घोषणा की है कि मुझे ईश्वर की आज्ञा से गैब्रिल नामक फिरिश्ते के द्वारा धर्मोपदेश करने के लिए कुरानशरीफ प्राप्त हुआ है। (कुरान ; सूरा : २-९१ ; ४२-५२ ; ५३-१)। [देखो टिप्पणी]। और यही कारण है कि मुहम्मद साहब के निषेध करने पर भी उनके अनुयायियों में बहुतेरे ऐसे हैं जो भूत-प्रेत की पूजा करते हैं और अपने पीरों की कब्र पर दीपक जलाते हैं। [" विभिन्न देवलोकों के देवता उसी वर्ग के हैं जिस वर्ग के फिरिश्ते और फकीर हैं। "—देखो Prinsep : 'Tebet, Tartary and Mongolia,' पृष्ठ १४०]। पारसी और चीनी धर्म न केवल भूत-प्रेत में विश्वास करते हैं, प्रत्युत वे अग्नि-पूजन के ही आधार पर खड़े हुए हैं। [चीनियों की अग्नि-उपासना और पितृ

है। इस धर्म के अनुसार मनुष्य का परम कर्तव्य अपने को देवताओं की कोटि तक उठाना है।

(४) अग्नि-पूजन इस कर्तव्य के संपन्न करने के लिए यह अनेक साधनों का निर्देश करता है।

इस प्रकार उक्त वैदिक धर्म,[१] ईसाई धर्म[२] की ही भाँति,

अर्चन के रूप में अग्नि-पूजा के संबंध में, देखो Frazer's 'Golden Bough,' भाग १०, पृष्ठ १३६ से और भाग २, पृष्ठ २२१]।

१ सभी वेद मनोहर वाणी से पथ-प्रदर्शक की भाँति अग्नि की वंदना करते हुए आरंभ होते हैं,—"जीवन के पथ-विहीन समुद्र में पड़े हुए नाविकों के लिए यह ध्रुव तारा है", (महाभारत, वनपर्व २००-१३)। मिलाओ "वेदों का उद्घाटन इसलिए किया गया है कि मनुष्य देवताओं का समुचित पूजन कर सकने में समर्थ हो सके।" (महाभारत, शांतिपर्व, मोक्षधर्म ३२७-५०)। [देखो टिप्पणी]।

२ ईसाई धर्म और उसके गिरजों का मूल आधार मूसा द्वारा पवित्रीकृत अग्नि ही है। देखो Exodus III, 2; XIX, 18; Deuteronomy V, 25-26; Leviticus IX, 23-24; VI, 12-13; Chronicles VII, 1; Kings XVIII, 38; Numbers IV, 13; Isaiah VI, 4-5; Ezekiet I, 4; Revelation I, 13-15; II Thessalonians I, 8; Acts II, 3; Daniel VII, 10; Exodus XIII, 21। [देखो टिप्पणी]।

अग्नि-पूजन[1] का विधान करता है ; क्योंकि इस धर्म की दृष्टि से अग्नि ही एक ऐसा पदार्थ है जो उन दिव्य आत्माओं से संबंध स्थापित करने के उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि वे ज्वालामय शरीरवाले हैं[2] और इसीलिए केवल अग्नि में ही प्रकट होते हैं। अग्नि ही उनके प्रत्यक्ष होने के लिए उपयुक्त तत्त्व[3] है। अपने इस मत

---

१ इसके लिए अन्य उपाय भी निर्दिष्ट किए गए हैं (उनका संबंध चाहे अग्नि से हो अथवा नहीं), जैसे—योग और तंत्र। इन दोनों का उद्देश मनुष्य को देव-कोटि तक पहुँचाना है।

२ बाइबिल : Isaiah, अध्याय ६ ; महाभारत, वनपर्व २६१-१२ ; सांख्य-दर्शन पर अनिरुद्ध का भाष्य, ५-११२। ऋग्वेद ९-११३-४। [देखो टिप्पणी]।

३ ऋग्वेद १-१-२ ; १-१२-१ ; १-२२-१०। [देखो टिप्पणी]। जो अग्नि देवताओं के लिए उपयुक्त तत्त्व बतलाई गई है और जिसमें देवता मनुष्यों को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं, वह पहले लकड़ियों के संघर्षण से आविर्भूत हुई और वेदों में प्रमथन के नाम से प्रख्यात है। यही यूनानी पौराणिक आख्यानों में वर्णित प्रोमेथियस के अग्नि चुराने का मूल है। (देखो Kaegi : 'Rigveda,' पृष्ठ १२२, अँगरेजी अनुवाद। कुन और श्मिट के अनुवाद भी। शेक्स-पियर इसका वर्णन संजीवनी शक्ति के रूप में करता है और इसे मृत

का प्रदर्शन करने के लिए सनातनधर्मानुयायी सामान्यतः सिर पर बालों का एक गुच्छा रखते हैं, जिसे वे शिखा कहते हैं (शिखा शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है—अग्नि की लपट)[1]।

शरीर में फिर से जीवन-संचार करनेवाली बतलाता है—"वह प्रोमेथियस द्वारा हरण की हुई अग्नि जो तुझमें पुनः ज्योति प्रज्वलित कर सकती है।" (Othello, 5-2-12)।

१ तीन प्रकार के मंदिर पाए जाते हैं और वे अपने बाहरी ढाँचे से इस बात को लक्षित करा देते हैं कि उनमें किस प्रकार की पूजा होती है। जिन मंदिरों के शिरोभाग वृत्ताकार (गुंबज, मसजिद) होते हैं वे पुरुष-चिह्न अर्थात् लिंग के पूजन का संकेत करते हैं, त्रिभुजाकार मंदिर (पिरामिड) स्त्री-चिह्न अर्थात् योनि की पूजा का निर्देश करते हैं और अग्निज्वाला के से आकारवाले मंदिर अग्नि-पूजन के निमित्त हैं। (मिलाओ Jennings: 'Nature Worship,' Phallicism, पृष्ठ ५५-५६)। इन सभी अग्नि-मंदिरों के तल में एक त्रिभुजाकार स्थान होता था जिसे वेद में 'योनि' (जननस्थान) कहा गया है। इसमें घृत निरंतर जलता रहता था। (ऋग्वेद १-१४०-१ : ३-५-७)। [देखो टिप्पणी]। (मिलाओ Goldstucker 'Literary Remains,' भाग १, पृष्ठ २५, और स्टेवेंसन की सामवेद की भूमिका भी)। प्रज्वलित घृत के ठीक ऊपर एक (घी से भरा) घड़ा लटकाया जाता था

यही नहीं, ये लोग अपने मंदिरों का निर्माण भी अग्नि-ज्वालाओं की शिखा के ही रूप में करते हैं (जो नीचे फैला रहता है और ऊपर की ओर क्रमशः नुकीला होता जाता है)। इसके अतिरिक्त ये लोग गाय की भी पूजा

(५) गो

जिसे कुंभ कहते थे (अथर्ववेद ३-१२-८), [देखो टिप्पणी]। इस घड़े में से घी की बूँदें निरंतर टपका करती थीं, जिससे अग्नि प्रज्वलित रहा करती थी ('घृतस्य धारा':—ऋग्वेद, ४-५८-५ से ८)। [देखो टिप्पणी]। प्राचीन काल में एक निश्चित समय के अनंतर इन कुंभों के मेले प्रयाग अर्थात् अग्नि-पूजन (याग) के केंद्रों में हुआ करते थे, जिसे कुंभ-मेला कहा करते थे। अंत में जब विदेशियों द्वारा गौओं के निर्यात और वध से घी बहुत महँगा हो गया (ऋग्वेद, १०-१०८) [देखो टिप्पणी] तो वहाँ अग्नि के स्थान पर एक प्रस्तरखंड की स्थापना की गई; वस्तुतः लिंग-पूजा से जिसका कोई संबंध नहीं है, पर व्यर्थ ही लोग इस प्रकार के भारी भ्रम में पड़ गए हैं। उक्त प्रस्तर-खंड अग्नि का लिंग अर्थात् प्रतीक था। साथ ही घृत-कुंभ के स्थान पर एक जल-घट लटका दिया गया, जिससे उसी प्रकार जल की बूँदें निरंतर टपकने लगीं। (मिलाओ महाभारत, वनपर्व २२८-५; २२९-२७)। [देखो टिप्पणी]। अब तो कुंभ-मेला का नाम-ही-नाम शेष रह गया है।

करते हैं, क्योंकि देवताओं के निमित्त अग्नि को पवित्र बनाने के लिए गो-घृत की आहुति देने का विधान किया गया है। इसका कारण यह है कि मेदमय पदार्थों[1] के अतिरिक्त अन्य पदार्थों द्वारा प्रज्वलित की जानेवाली अग्नि देवताओं के लिए पवित्र नहीं समझी जाती। इसके अतिरिक्त सनातनधर्मी जातकर्म के समय अग्नि प्रज्वलित करते हैं, विवाह में साक्ष्य के लिए अग्नि का विधान है और अंत में मरने पर मृतक-संस्कार के लिए भी अग्नि ही का व्यवहार किया जाता है।

(६) विवाह और आचरण की पवित्रता

यही नहीं, सनातनी वैवाहिक क्रिया को बहुत पवित्र मानते हैं और उनकी धारणा है कि यदि दंपति विश्वासपूर्वक शुद्धाचरण से रहें तो वे देवकोटि में पहुँच सकते हैं। सनातनधर्मियों की शक्ति-पूजा का यही मूल है।

---

१ बाइबिल में भेड़ की मज्जा (Leviticus VI, १२ ; IX, १९)। ऋग्वेद ऐसी मज्जा का निषेध करके उत्तम गुणवाले गो के घृत का विधान करता है। बाइबिल में भी एक भविष्यवाणी की गई है, जिसमें कहा गया है कि मसीह के आगमन के साथ-साथ होनेवाले पुनरुत्थान के युग में गो-रक्षण और गो-घृत का बहुतायत से उपयोग होगा। (देखो Isaiah VII, २१-२२)। [देखो टिप्पणी]।

प्रथम अध्याय

बुद्ध स्वयं हिंदू-धर्म के अनुयायी थे

गौतम बुद्ध पुरातन वैदिक धर्म (सनातनधर्म अथवा हिंदू-धर्म) के ही फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे और उन्होंने जिस धर्म का उपदेश किया वह कोई नवीन धर्म नहीं था, जैसा भूल से कभी-कभी समझा जाता है। प्रत्युत वह उन अतिक्रमणों और अनाचारों के सुधार के रूप में उठ खड़ा हुआ था जो तत्कालीन वैदिक धर्म की परंपरा में घुस पड़े थे[1]। वे भारत की क्षत्रिय अथवा वीरकर्मा जाति के थे।

---

1 देखो प्रस्तुत पुस्तक के अंत में विद्वानों के वचनों का उद्धरण। मिलाओ "कम-से-कम बौद्ध-धर्म आरंभ में धार्मिक क्रांति की अपेक्षा सामाजिक क्रांति को कहीं अधिक लिए हुए था। यह धर्माध्यक्षों की धूर्तता के उस जाल को काट फेंकने के लिए उठ खड़ा हुआ था जिसे ब्राह्मणवाद ने समाज के चारों ओर फैला रखा था।" (Smith : 'Mohammed and Mohammedanism', p.

उनका नाम शाक्यसिंह इसका साक्ष्य देता है, क्योंकि क्षत्रियों के व्यक्ति-बोधक नामों के साथ सिंह बराबर जोड़ा जाता है[1]।

बुद्ध नैपाली क्षत्रिय थे और हिंदू-धर्म के ही क्षेत्र में जन्मे थे

वे जन्मना नैपाली थे और प्राचीन कालीन महर्षि कपिल के आश्रम कपिलवस्तु में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता, जो क्षत्रिय (सिंह) थे

---

4)। मिलाओ Max Muller : 'Chips from a German Workshop,' Vol. I, P. 220 ; Spence Hardy : 'Legends and Theories of the Buddhists,' Intro. P. 13-20 ; Beal : 'Buddhist, Pilgrims,' Intro., p. 49, ff. मिलाओ Powell : 'Buddha, the Reformer of Brahmism' (Utica, U. S. A.); मिलाओ Clarke : "Buddhism, or The Protestantism of the East' (Atlantic Monthly, Boston, Vol. XXIII, p. 713 ff.) भी।

१ कनिंघम ने अपनी स्वाभाविक विदग्धता से बुद्धगया के प्रसिद्ध मंदिर के शिलालेख का मनन करते हुए बुद्ध का वास्तविक नाम ढूँढ़ निकाला था। उक्त शिलालेख में लिखा है—"जहाँ कुमार शाक्यसिंह बुद्ध हुए।" [देखो टिप्पणी]। मिलाओ Hunter's 'Gaya and Shahabad,' p. 53 ; Sherring's 'Benares,' p. 5 (Sakya Muni)। गृह का त्याग करने और बुद्धत्व प्राप्त करने के बीच बुद्ध 'शाक्य मुनि' के नाम से

और जिनका वास्तविक नाम वस्तुतः विलुप्त हो गया है, शास्त्रानुयायी कट्टर हिंदू थे और अपने शुद्ध भोजन के लिए प्रख्यात थे। इसीलिए उन्हें शुद्धोदन की उपाधि मिली थी, जिसका अर्थ है शुद्ध शाकाहारी[1]। इस प्रकार बुद्ध

विख्यात थे। यह नियम भी है कि यदि किसी व्यक्ति के नाम में 'मुनि' शब्द जोड़ा जाता है तो वह उसके प्रादेशिक नाम में ही। १२५० ई० में मार्कोपोलो ने भारत का भ्रमण किया था। उन्हें बुद्ध सामान्यतः शाक्य मुनि (सागमोनी) के नाम से ही प्रसिद्ध मिले—Book III, Ch. 15. (Cardier's Ed. Vol. II, P. 316)। [मिलाओ Sandor Csoma Korosi : 'Notices on the life of Shakya, extracted from the Tibetan authorities' (Asiatic Researches, Calcutta, 1836, Vol. XX, p. 285-317)]।

१ यहाँ यह विचारणीय है कि इस प्रकार का कोई दूसरा नाम तत्कालीन इतिहास में नहीं पाया जाता। अतः यह अनुमान करना तर्क-विरुद्ध न होगा कि यह नाम न होकर एक उपाधि थी जो उस मनुष्य के आचरणगत विचित्र लक्षणों के कारण उसके लिए प्रयुक्त की जाती थी। नैपाल सदा से एक मांसाहारी प्रदेश रहा है। अतः मांस-भक्षण न करने का प्रण करनेवाले का इस बात के लिए विशेष उपाधि प्राप्त करना स्वाभाविक ही है।

हिंदू-धर्म के शुद्धतम स्वरूप के ही अंतर्गत उत्पन्न हुए थे[1] और उसी के पालने में पाले गए थे। वे स्वयं पुरातन वैदिक धर्म के अनुयायी थे।

जन्मतः शाकाहारी

उनकी उपाधियों में से एक उपाधि है अर्कबंधु, जिसका अर्थ है 'सूर्य का मित्र'[2]। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वे सूर्य की सतत उपासना के लिए प्रख्यात थे; और सूर्योपासना भी अग्नि-पूजन का दूसरा रूप ही है[3]। बुद्ध के मत और उनके अनुयायियों के विभिन्न संप्रदायों में भी निश्चित रूप में अग्नि-

अग्नि-पूजक

---

१ मिलाओ हेमाद्रि, व्रतखंड, अध्याय १५—" इस प्रकार शुद्धौदन (पवित्रान्न-भोजन) का व्रत करने से स्वयं जनार्दन बुद्ध के रूप में उत्पन्न हुए।" (पुत्र रूप में—भविष्य पुराण में)। [देखो टिप्पणी]।

२ देखो संस्कृत के कोश :—अमरकोश १-१-१-१०; हेमचंद्र का अभिधान-चिंतामणि २-१४९ से; यादव-प्रकाश का वैजयंती कोश १-१-२५ (ऑफ्ट संस्करण)। [देखो टिप्पणी]।

३ अग्नि-उपासक लोग सूर्य की भी पूजा करते हैं क्योंकि सूर्य विश्व-भर की अग्नि का केंद्र है। " अग्नि और सूर्य का संबंध निर्भ्रम है। जापानी अग्नि और सूर्य को एक ही नाम 'ही' से संबोधित करते हैं" (Aston: 'Shinto,' P. 159)। पारसियों की अग्नि-पूजा

पूजन के लक्षण पाए जाते हैं[1]। वैदिक विधि के विधानानुसार अग्नि (यज्ञ) के उपासक के लिए अपने मस्तक पर एक पगड़ी (उष्णीप अथवा शिरस्त्राण) धारण करनी पड़ती है। ऋषि-गण इस प्रकार की पगड़ी धारण किया करते थे और बुद्ध भी इस पगड़ी से विहीन नहीं देखे जाते[2]। बुद्ध के पूजन के स्थान का नाम चैत्य है। इस

का नाम 'मिथ्रिज्म' अथवा सूर्योपासना रखा गया है (क्योंकि अवेस्ता में सूर्य मिथ्र और वेदों में मित्र नाम से पुकारे जाते हैं)। मिलाओ ऋग्वेद ३-५-४ ; १०-४५-१ भी। [देखो टिप्पणी]।

१ बुद्ध ने अग्नि-पूजा को विहित बतलाया है और वे स्वयं भी अग्नि की पूजा किया करते थे (देखो आर्यमंजुश्री मूलकल्प, अध्याय १२) ; बुद्ध ने उसी वृक्ष (अश्वत्थ) के नीचे बैठकर समाधि लगाना स्वीकार किया था जिसकी लकड़ी हवन के लिए विशेष रूप से पवित्र समझी जाती है (Rhys Davids : 'Buddhist India' p. २३१)। मिलाओ Hargrave Jennings : 'The Results of the Mysterious Buddhism,' (अध्याय २२ और अन्यत्र)। [देखो टिप्पणी]।

२ वेद सभी अग्नि-पूजकों के लिए उष्णीप (अर्थात् शिरोवस्त्र) का विधान करते हैं (अथर्ववेद १५-२-१ ; ऐतरेय ब्राह्मण ६-१ ; आश्वलायन श्रौत सूत्र ५-१२ ; कात्यायन श्रौतसूत्र २२-४-१०)। [देखो Waddell : 'Buddha's Diadem or

शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है यज्ञ-स्थान[1]। उनके मंदिर यद्यपि अपनी निज की विशेषताएँ लिए हुए हैं, तथापि यह निर्विवाद है कि वे अग्नि की लपट के आकार के बने हुए हैं। उनके अनुयायी अपने मूलतः अग्नि-पूजन का निदर्शन करने के लिए अपने मस्तक में बालों का गुच्छा भी धारण करते हैं, जिसका नाम शिखा (व्युत्पत्ति से अग्नि की लपट) है। वे गो का आदर करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं। वे दीपक जलाने के लिए घी का बहुतायत से उपयोग करते हैं और अपनी अन्य पूजन-क्रियाओं में भी उसे काम में लाते हैं[2]। यहाँ तक कि सुदूर पामीर में

'Usnisa'; बौद्ध-उद्गमों का अध्ययन (बर्लिन); और मिलाओ पुस्तक का नाम : उष्णीष-विजय-धारणी (ऑक्सफोर्ड)]। [देखो टिप्पणी]।

१ [मिलाओ नारायण ऐयंगर : Chaityas. (Indian Antiquary, Bombay, 1882 ; Vol. II)]. चैत्य शब्द चित्य से बना है जिसका अर्थ है अग्नि (पाणिनि ३-१-१३२)। अतः चैत्य का अर्थ हुआ 'यज्ञ अथवा अग्नि का स्थान' (देखो शब्द-कल्पद्रुम में दोनों शब्दों की व्याख्या)। [देखो टिप्पणी]।

२ [मिलाओ बौद्धों के 'प्रदीपदानीय सूत्र' में घृत का

भी अब तक बुद्ध को प्रतिमाओं के समक्ष 'घृत का प्रकाश' किया जाता है[1]।

सभी अग्नि-पूजकों की भाँति बुद्ध ने भी देवों अर्थात् पारलौकिक जीवों की स्थिति की घोषणा की है और उनके छोटे-बड़े भेद भी माने हैं। साथ ही उनके निवास के लिए कतिपय अदृश्य लोकों (विश्वचक्रों अथवा दिव्य लोकों) को भी माना है[2]। उन्होंने इंद्र (देवराज), ब्रह्मा (सहंपति अथवा सभापति), कुबेर (यक्षराज) और मार (काम-

देवों में विश्वास करनेवाले

दीपक जलाने की विधिवाला प्रकरण)। अब भी बौद्ध यात्री बुद्ध-गया अथवा अन्य मंदिरों में बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष अतिपरि-माण में घी जलाते हुए देखे जा सकते हैं। बुद्धगया के प्रसिद्ध मंदिर के धरातल पर एक बहुत बड़ा वृत्ताकार चिह्न है। बुद्ध की प्रतिमा की दृष्टि इसी की ओर संलग्न ज्ञात होती है। उक्त स्थान वस्तुतः घृत जलाने का कुंड था। यहाँ पीछे से उसी प्रकार लिंग की स्थापना की गई जिस प्रकार घृत के मँहगे हो जाने पर भारत के सभी अग्नि-मंदिरों में लिंग-स्थापना हुई थी।

१ Lord Dunmore : 'The Pamirs,' Vol. I, p. 145.

२ Rhys Davids : 'The Buddist Suttas, p.88, p. 154. [देखो टिप्पणी]।

देव) के अपने समक्ष समय-समय पर उपस्थित होने की बात कही है। ये सब-के-सब हिंदू-धर्म में वर्णित देवता हैं। उनके अनुयायियों ने आगे चलकर अपनी उपासना-पद्धति को प्रतिमा-पूजन के समर्थक तंत्रों में मिला दिया। ये तंत्र और कुछ नहीं, अग्नि के ही द्वारा देवताओं की उपासना करनेवाले हैं[1]।

वर्ण-भेद को माननेवाले

हिंदू[2] होने ही के कारण बुद्ध ने सनातनधर्मानुमोदित वर्ण-भेद का आदर किया है। इस कथन को प्रमाणित करनेवाले वचन भी मिलते हैं और इसलिए विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं कि बौद्ध-धर्म के आगमों में पाए जाते हैं। "बोधिसत्त्व अथवा निर्वाचित बुद्ध वर्ण-विभेद को मानते हैं। वे

---

१ [देखो टिप्पणी]। डा० एन्रीक्वेज अपने 'बौद्ध-धर्म में प्रतिमाएँ' (Images in Buddhism) नामक ग्रंथ में बौद्ध-धर्म की मूर्ति-पूजा को एक आश्चर्यजनक बात कहते हैं। मिलाओ Knebel: 'The Vahnas of the Brahmanical and Buddhistic Pantheon.' (Tijdschrift voor Indische Kunde, Batavia, deel 47, P. 227-340).

२ बुद्ध के हिंदू होने के विषय में मिलाओ Waddell: 'Buddha's Secret from a Sixth Century Commentary.' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1894, P. 372).

कभी निम्न वर्णों में जन्म नहीं ग्रहण करते। इसलिए वे केवल दो ही उच्च वर्णों में से किसी एक में जन्म लेते हैं अर्थात् ब्राह्मण-वर्ण में अथवा क्षत्रिय-वर्ण में[1]।" "इस प्रकार का दान करने पर गुण-संपन्न पुरुष बोधिसत्त्व अथवा बुद्ध-स्वरूप हो जाता है और क्षत्रियों अथवा ब्राह्मणों के (उज्ज्वल) वंश में जन्म लेता है[2]।"

"वे नीच कुल में कभी नहीं उत्पन्न होते, यह बोधिसत्त्व का एक विशेष लक्षण है।" "बोधिसत्त्व उच्च कुल में

---

१ ललितविस्तर, अध्याय ३, पंक्ति १४६ से (लेफमैन-वाला संस्करण) । [देखो टिप्पणी]। "कुछ प्राचीन बुद्ध (पूर्वबुद्ध) ब्राह्मण थे"—Sherring's 'Benares,' P. 153। बुद्ध-वंश में पूर्वबुद्धों में से ब्राह्मण अधिक थे और क्षत्रिय थोड़े। ब्राह्मणों के वर्ण-धर्म के नियमों को बुद्ध ने विहित बतलाया था और प्रायः ब्राह्मणों को ही अपना शिष्य भी बनाया। (देखो Copleston : 'Buddhism Past and Present,' Ch. 16)। बुद्ध ने वर्ण-धर्म के सिद्धांत की निंदा कभी नहीं की। उन्होंने केवल इस बात का खंडन किया था कि सभी वर्ण मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं। [मिलाओ Chalmers : 'Madhura Sutra' (Journal of the Royal Asiatic Society, 1894, P. 348)]।

२ शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता [देखो टिप्पणी]।

जन्म लेते हैं—क्षत्रिय-वंश में अथवा ब्राह्मण-वंश में। वे उसी कुल में उत्पन्न हुए थे जिसमें पूर्व-बोधिसत्त्व जन्मे थे[1]।"

आहार-नियमों के अनुस्थापक

उन्होंने जिस प्रकार वर्ण-भेद को मान्य समझा, उसी प्रकार प्राचीन धर्म द्वारा अनुमोदित भोजन-संबंधी नियमों पर भी ध्यान दिया है। उन्होंने भोजन-संबंधी विधानों में श्रमणों (संन्यासियों, साधुओं)[2] के लिए सभी आहारों—जैसे दूध और उससे बने हुए पदार्थों तक का—निषेध किया है। इस

---

[1] शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अध्याय १०, पृष्ठ १४६०, और पृष्ठ १४७१ (एशियाटिक सोसाइटीवाला संस्करण) [देखो टिप्पणी]।

[2] ग्राह्य और अग्राह्य भोजन की एक सूची भिक्षु-प्रातिमोक्ष सूत्र में पाई जाती है। (Oldenberg : 'Vinaya Texts,' Vol. I, P. 40)। यहाँ यह बात विचारणीय है कि बुद्ध ने अपने अथवा अपने अनुयायियों के लिए जो श्रमण शब्द प्रयुक्त किया है, उसका निर्माण स्वयं बुद्ध ने नहीं किया है वरन् वह उनके पहले से हिंदुओं के रामायण में पाया जाता है और वहाँ सामान्य संन्यासी (साधु) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—देखो वाल्मीकीय रामायण, बालकांड १४-१२। [देखो टिप्पणी]।

प्रकार वे स्वादिष्ट आहार के निषेध में शास्त्रों से भी आगे बढ़ गए हैं। पर इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने श्रमणों को सब प्रकार के दाताओं से कुल का विचार किए बिना अनिषिद्ध भिक्षान्न ग्रहण करने की आज्ञा दी है, जैसा कि वे स्वयं किया करते थे। इस विषय में श्रीशंकराचार्य और उनके अनुयायी (संन्यासी) भी, जो हिंदू-धर्म में सर्व-श्रेष्ठ धार्मिक व्यक्ति समझे जाते हैं, उनसे बहुत अधिक समानता रखते हैं। यहाँ पर एक बात ध्यान देने की यह है कि बुद्ध ने प्राचीन धर्म की परंपरा का अनुसरण करते हुए मृतकों का अग्नि-संस्कार करने का विधान किया और श्रीशंकराचार्य ने इससे हटकर अपने अनुयायियों को विदेशी ढंग से मृतकों को गाड़ने की आज्ञा दी।

शव-दाह के आदेश

कुसीनारा में बुद्ध की मृत्यु होने के संबंध में जो कहानी प्रचलित है कि पावा में न पच सकनेवाला 'शूकर का सूखा मांस' खाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई थी, उसका समर्थन भ्रम-वश किया जाता है; क्योंकि यह बात असंभाव्य है। हाँ, यह ठीक है कि बौद्ध-ग्रंथों में लिखा है कि बुद्ध की मृत्यु का कारण '<u>शुष्क शूकर-मार्दव</u>' का खाना है

बुद्ध की मृत्यु की कहानी

और शुष्क शब्द का अर्थ है 'सूखा'। पर दूसरा पद शूकर-मार्दव—जिसका शाब्दिक अर्थ है 'शूकर के मांस की तरह मुलायम'—गोवरछत्ते (छत्रक) के पौधे का नाम है[१]। किसी आधुनिक उत्थाकार ने 'शूकर-मार्दव' का अशुद्ध अर्थ 'सुअर का मांस' करके बुद्ध की मृत्यु के संबंध में असत्य कहानी प्रचलित कर दी है।

सुअर का सूखा मांस एक अपरिचित पदार्थ है, क्योंकि सुअर के मांस में बहुत अधिक चर्बी होती है, इसलिए वह बिना सड़े और नष्ट-भ्रष्ट हुए सूखी अवस्था में नहीं लाया जा सकता। विशेषतः पावा में शूकर के सूखे मांस का होना एक तर्कहीन बात है, क्योंकि उस प्रांत में साल-भर सब प्रकार के शूकर पाल रखे जाते हैं। बुद्ध शुद्धोदन (जिन्हें यह उपाधि अपने शुद्ध आहार के ही कारण मिली थी) के वंश में उत्पन्न हुए और पाले गए थे और

---

१ मिलाओ बरेली के चुन्नीलाल शास्त्री का 'आस्तिक बुद्ध' (Buddha as a Believer) शीर्षक विद्वत्तापूर्ण निबंध। देखो Neumann : 'Die Raden Gotama Buddho's'; मिलाओ Nariman : 'Tiel's Religion of the Iranian People,' preface, P. 6 और शीलाचार का Catechism भी। (न्यूमैन शूकर-मार्दव को संस्कृत का शुक्र-मार्दव मानते हैं)।

उन्होंने स्वयं सारे संसार को जीव-हिंसा से विरत रहने का उपदेश दिया था। ऐसे बुद्ध शूकर का सूखा मांस खानेवाले बड़ी कठिनाई के साथ माने जा सकते हैं, विवश होकर ही उनके संबंध में यह बात कही जा सकती है; क्योंकि सुअर का मांस प्रसिद्ध आमिषाहारी की जिह्वा के लिये भी कुस्वादु है। जिस चंद ने उन्हें जीवन का अंतिम भोजन दिया था, वह हिंदू था और जाति का सोनार[1] था। उसके लिये शूकर का मांस अपृश्य था, क्योंकि यह परंपरा उस प्रदेश में अज्ञात काल से प्रचलित है। जिन मुसलमानों के धर्मानुसार शूकर का मांस 'हराम' कहकर निषिद्ध माना गया है और जो कि सुअर का मांस खानेवालों को गालियाँ देते और उनकी घोर निंदा करने में कोई बात उठा नहीं रखते, बड़े आश्चर्य की बात है कि इतना होने पर भी सांप्रदायिक विवाद से भरे हुए सारे-के-सारे उन मुसलमानों के साहित्य में कहीं भी अखाद्य 'हराम' का भक्षण करने के अपराध में बुद्ध के ऊपर गालियों की वर्षा नहीं की गई है। इसके विपरीत शाहिरिस्तानी ऐसे प्रामाणिक और प्राचीन मुसलमानी ग्रंथ उनका नाम संमान के साथ लेते

---

१ *Oldenberg: 'Buddha,' P. 200.* र्‍हीस डेविड्स के मतानुसार वह कसेरा था। देखो 'Buddhist Suttas,' P. 73.

हैं। इसलिए यह उक्ति कि बुद्ध की मृत्यु सुअर का सूखा मांस खाने के कारण हुई थी प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती। इस बात पर विचार करने के लिए 'शुष्क' पद और बुद्ध की मृत्यु का मौसिम दोनों ही बड़े महत्त्व के हैं। यदि शूकर के मांस के साथ इनका सामंजस्य बैठाया जाय तो कोई अर्थ नहीं निकलता और यदि गोबरछत्ते (छत्रक) से इनका सामंजस्य बैठाया जाय तो यह सब उलझनों को सुलझाकर दूर कर देता है। पावा के और कुसीनारा के, जहाँ बुद्ध की मृत्यु हुई थी, गरीब लोग अब भी बरसात के मौसिम में ताजा गोबरछत्ता भोजन के व्यवहार में लाते हुए पाए जा सकते हैं। बरसात ही इसके खाने का खास मौसिम है। वे लोग दूसरे मौसिमों में खाने के लिए गोबरछत्ते को सुखाकर रख लेते हैं। वैद्य लोग इसे भोजन के लिए हानिकारक बतलाते हैं। इसको पचा लेना बहुत कठिन है। यही नहीं इसकी कई किस्में विषाक्त होती हैं और उनके खाने से संग्रहणी हो जाती है, जिससे लोग मर तक जाते हैं[1]। बुद्ध की मृत्यु संग्रहणी से हुई थी

---

१ भाव-प्रकाश (प्रथम खंड): शाकवर्ग १०५-१०७। इसके पौष्टिक गुण और कुछ किस्मों के विषाक्त होने के संबंध में देखो Lorand : Health and Longevity through Rational

और वसंत ऋतु[1] में उन्होंने शरीर छोड़ा था। अतः स्पष्ट है कि उन्होंने यदि अपनी मृत्यु के पहले गोबरछत्ता खाया होगा तो उस मौसिम में सूखा ही खाया होगा। बुद्ध की मृत्यु के संबंध में प्रचलित 'शुष्क शूकर-मार्दव' का इस बात से भली भाँति स्पष्टीकरण हो जाता है। उनपर मांस-भक्षण का कलंक देवदत्त ने लगाया था, जो उनका घोर विरोधी था और जिसे वे सदा देवता की भाँति क्षमा[2] कर दिया करते थे। इस प्रकार की बातों का उल्लेख इसी रूप में किया जा सकता है, और किसी प्रकार से नहीं कि बुद्ध भगवान् ऐसे अलांछनीय व्यक्ति के चरित्र पर कलंक लगाने के ही लिए किसी ने ऐसा प्रचारित कर दिया है, वह भी ऐसे व्यक्ति के लिए जिसके संबंध में किसी प्रकार के विसंवाद की संभावना तक नहीं की जा सकती। अब

Diet, PP. 241-246—"इसकी खानेवाली किस्में भी जब कभी कुछ दिनों तक रखी रहती हैं तो शीघ्र ही सड़ जाती हैं और उनमें जहरीलापन आ जाता है।" "इन्हें पचाने के लिए अच्छे और अभ्यस्त आमाशय की आवश्यकता है।"—(लॉरैंड)।

१ Rhys Davids: 'The Buddhist Suttas,' P.72.

२ बुद्ध के अनुयायी जब उनके किसी निंदक को दंड देने

भी ऊँची श्रेणी के बौद्ध-भिक्षु अपने पूज्य धर्मोपदेशक के आदर्श का अनुसरण करते हैं और बड़ी कट्टरता के साथ मांस-भक्षण से दूर रहते हैं[1]।

आचार-नीति और दार्शनिक सिद्धांत दोनों में बुद्ध ने वैदिक ऋषियों का पदानुसरण किया है। वैदिक ऋषियों के प्रति उनकी सत्कार-बुद्धि का पता इस बात से चलता है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने कथनों के प्रमाण में उनके वचनों का उल्लेख किया है। उन ऋषियों को वे पूर्वबुद्ध अर्थात् प्रचीन बुद्ध[2] के नाम से पुकारते थे। यही बात

वैदिक ऋषियों के अनुयायी :—

के लिए उद्यत होते तो ये उन्हें रोक लेते और उपदेश देते कि तुम लोग उसे अबोध समझो। (मिलाओ दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सूत्र § ५ से)

१ मिलाओ 'Binning's Travels,' Vol. I, p. 19. मिलाओ Hopkins : 'The Buddhist rule against eating meat' (Journal of American Oriental Society, New Haven, 1907, Vol. XXVII, p. 457 and seq.) भी।

२ मिलाओ—La Vallee Poussin : 'On the authority (प्रामाण्य) of the Buddhist Agamas'

उनके निम्नोक्त कथन से भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है कि मैंने बनारस को अपने धर्म-प्रवर्तन का संदेश देने का प्रारंभ करने के लिए इस कारण चुना कि यह एक बहुत प्राचीन प्रदेश है और प्राचीन ऋषियों द्वारा पवित्र समझा जाता है[1]।

—नीति में ;

विनयसूत्र अथवा बौद्धागम का नीतिशास्त्र स्पष्ट ही हिंदू-धर्मशास्त्र के गृह्यसूत्र का संक्षिप्त अनुवाद है[2]। उन्होंने

(Journal of the Royal Asiatic Society, London., 1902, p. 374).-George Buehler: 'Buddha's quotation of a Gatha by Sanatkumara' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1897, p. 585 ff).—Watanabe: . 'The story of Kalmasapada. A Study in the Mahabharata and the Jataka.' (Journal of the Pali Text Society, London, 1909, P. 236-310).—Hardy: 'The story of the merchant Ghosaka, with reference to other Indian parallels' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1898. p. 787 ff).

१ ललितविस्तर, अध्याय २५ (अध्याय के अंत में) [देखो टिप्पणी]।

२ मिलाओ Fuehrer: 'Manusara-dhamma-sattham, the Buddhist law book compared with the Brah-

जो जीव-वध और सामान्य रूप से हिंसा का निषेध किया है वह भी प्रसिद्ध वैदिक प्रमाणों के आधार पर ही। उनको उन्होंने ज्यों-का-त्यों उद्धृत भी कर दिया है[1]। उनका विश्व-प्रेम का सिद्धांत, अघृणा के द्वारा घृणा को जीतने

---

manical Manava-dharma-sastram or Manu Samhita' (Journal of the Royal Asiatic Society, Bombay, 1882, Vol XV, P. 333 ff);—पाली धर्मशास्त्रों का उद्गम वैदिक गृह्यसूत्र होने के संबंध में एडमंड हार्डी का मत : 'Der Grhya-Ritus pratyavarohana im Pali-Kanon' (Deutsche Morgenlandische Gesellschaft. Zeitschrift. Leipzig, Band 52, P. 149-151);–Franke : 'Die Gathas des Vinayapitaka und ihre Parallelen' (Vienna, 1910). [बौद्ध-धर्म में ब्राह्मण-धर्म के प्रमाण के लिए देखो Max Muller : 'Dhammapada', P. 28. । बौद्ध धर्म-ग्रंथों के शतपथ ब्राह्मण से संबंधित होने के विषय में देखो Kern : 'Saddharma-Pundarika,' P. XVI ff.; और महाभारत एवं मनुस्मृति से संबंध होने के विषय में देखो Buhler : 'The Laws of Manu,' P. XCI, note).

१ वेद का वचन : 'मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि'—'किसी जीव को मत मारो' (श्रीधर स्वामी द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता १८-२ में उद्धृत)। यह उल्लेख करने योग्य है कि **अहिंसा परमो धर्मः**

के सिद्धांत पर आश्रित है, जो मूलतः एकदम वैदिक है[1]। उन्होंने विवाह-संबंधी पवित्रता के वैदिक सिद्धांत को माना है और व्यभिचार को अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखा है[2]।

ऋषियों की भाँति उन्होंने आत्मा, उसके पुनर्जन्म और भावी जन्म में विश्वास किया है और साथ ही प्रतिफल (कर्म) के सिद्धांत को माना है, जिसके अनुसार जन्मांतर में सुकर्मों का अच्छा

—दर्शन में ;

(हिंसा न करना ही परमधर्म है) वाक्य सबसे प्रथम बुद्ध ने ही नहीं उद्घोषित किया, जैसा कुछ लोग समझे बैठे हैं ; वरन् यह महाभारत में एक से अधिक बार प्रयुक्त हो चुका है। [देखो टिप्पणी]।

१ वेद कहते हैं—'अक्रोध रूपी पुल से क्रोध की अलंघनीय धारा को पार करना चाहिए' (सामवेद, छंद अर्चिक, अध्याय ६, पत्र १, मंत्र ९)। बुद्ध इसे इस प्रकार कहते हैं—'प्रेम के द्वारा वैर को जीतना चाहिए। वैर के द्वारा वैर की शांति कभी भी नहीं होती, वैर न करने से ही इसकी शांति होती है, यही इसकी प्रकृति है।' (धम्मपद १७-२ ; धम्मपद-१-५)। [देखो टिप्पणी]।

२ देखो Rhys Davids : 'Buddhist Suttas,' p. 91. [देखो टिप्पणी]।

और कुकर्मों का बुरा फल भोगना पड़ता है[1]। उन्हीं की तरह इन्होंने योग-दर्शन में विश्वास किया है,[2] स्वयं योगा-

---

१ 'हिंदू होने के कारण उन्होंने (बुद्ध ने) आवागमन अथवा जन्मातर की हिंदू-भावना को माना था—अर्थात् मरने पर पुनर्जन्म और नए जन्म की नई मृत्यु। जैसा अब भी लोग विश्वास रखते हैं।'—Waddell: 'Buddha's Secret from a Sixth Century Commentary' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1894, p. 372). मिलाओ–Gough: 'The Philosophy of the Upanishads,' p. 186.—कृष्णमाचार्य: 'Buddhism; its fundamental beliefs.' (ब्रह्मवादिन्, १९११)। [आनंद मैत्रेय अपने पुनर्जन्म (Transmigration) में दूसरा ही विचार प्रकट करते हैं]। [देखो टिप्पणी]।

२ अश्वघोष-कृत बुद्ध-चरित: अध्याय १२, पद्य १०३ (ऑक्सफोर्ड संस्करण)। [देखो टिप्पणी]। मूल श्लोक से प्रकट होता है कि बुद्ध ने केवल परीक्षा के लिए योगाभ्यास नहीं किया था, वरन् उसमें इनका दृढ़ विश्वास था। [मिलाओ Hermann Jacobi: 'On the relation of the Budhistic philosophy to Sankhya-Yoga and the signification of the Nidanas' (Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft, Band 52, pp. 1-15)।

भ्यास किया है[1] और उसके अभ्यास से योगिराज हो गए हैं[2] तथा साथ ही दूसरों को उसकी शिक्षा भी दी है[3]। उन्होंने योगियों की सबसे बड़ी शक्ति, पूर्वजन्मों की बातों के यथावत् स्मरण की शक्ति (जातिस्मरत्व)[4], को प्राप्त कर

मिलाओ Monier Williams : 'Mystical Buddhism in connection with the Yoga Philosophy of the Hindus' (Victoria Institute, Annual Report, 1888, London)। मिलाओ Senart : 'Bouddhisme et Yoga' (Review of the History of Religions, Paris, Vol. XLII) भी]।

१ मिलाओ जातक-पट्ठी पूजाप्रकरणं, पद्य २ ; और वायुपुराण १८-२८। [देखो टिप्पणी]।

२ मिलाओ श्रीशंकराचार्य के दशावतार-स्तोत्र में बुद्ध की वंदना [देखो टिप्पणी]।

३ इसी से बौद्ध-धर्म में योगाचार का एक संप्रदाय ही हो गया है।

४ यही बौद्ध-धर्म की समस्त जातक-कथाओं का विषय है। मिलाओ श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का कथन, ४-५ [देखो टिप्पणी]।

[यह साधारणतः अज्ञात है कि ईसप की कथाओं (Aesop's Fables) का उद्गम-स्थान जातक हैं, और सहस्र-रजनी-चरित्र (Arabian Nights' Entertainment)

लिया था। इनकी अध्यात्म-विद्या भी वैदिक ऋषियों से भिन्न नहीं है[1]। उनके स्वीकृत नामों में से एक नाम अद्वयवादिन्[2] भी है। जिसका अर्थ है, केवल एक की सत्ता के सिद्धांत को माननेवाला—उपनिषदों का सच्चा अनुयायी। उनके दार्शनिक मत में निरूपित उक्त एक अथवा अंतरात्मा वही है जिसे आर्यों ने अनंत चैतन्य (अथवा शुद्ध आत्मा) कहा है और प्राचीन वैदिक धर्म में 'ज्ञानमनंतम्' (अथवा ब्रह्म)[3] के नाम से जिसका प्रचार किया गया है। अपने उक्त सिद्धांत का मूल आर्यों का ही सिद्धांत प्रदर्शित करने के अभिप्राय से बुद्ध इसे 'आर्यप्रज्ञा-

---

बुद्धस्वामी की बृहत्कथा पर अवलंबित है—देखो Fytche: 'Burma Past and Present,' Vol. II, p. 144]।

१ मिलाओ La Valleet Poussin : 'Mahayana Buddhism' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1908, P. 889) ; Oldenberg: 'Die Religion des Veda und der Buddhismus' (Deutsche Rundschau, Berlin, 1895, Vol. LXXXV]।

२ अमरकोश, १-१-१-९ ; और वैजयंती-कोश, १-१-२४। [देखो टिप्पणी]।

३ तैत्तिरीयोपनिषद्, २-१ [देखो टिप्पणी]।

पारमिता ' के नाम से पुकारते हैं और इसमें वैदिक काल के विशेषण-पदों अर्थात् अमित (अनंत), निर्विकल्प (नित्य) आदि[1] का प्रयोग करते हैं। यही उनके दर्शन का वैदिक ब्रह्मवाद है। बौद्ध-दर्शनों में उक्त ब्रह्मवाद के मायावाद के अनुरूप शून्यवाद भी पाया जाता है। शून्यता का अर्थ बुद्ध ने संसार को बनानेवाले समस्त चेतन पदार्थों का स्वप्नवत् असत् व्यापार, भ्रांतिजनक आभास (अर्थात् माया)[2]

---

१ अभिधर्मपिटक (प्रज्ञापारमिता अष्टसाहस्रिका का आरंभिक श्लोक)। मिलाओ " बौद्ध-धर्म बहुधा नास्तिक-धर्म माना जाता है। पर यह विख्यात है कि बुद्ध ने कहीं भी स्पष्ट शब्दों में सांत से परे उस अनंत आदि-कारण अथवा विशुद्ध आत्मा का अस्वीकार नहीं किया।"—Waddell: Buddha's Secret from a Sixth Century Commentary' (Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1894, p. 384)। [देखो टिप्पणी]।

२ देखो कुमारिल भट्ट: तंत्रवार्तिक ८१-२०। मिलाओ La Vallee Poussin: 'Vedanta and Buddhism (Journal of the Royal Asiatic Society, 1910, P. 133-134).। हिंदुओं का योग-दर्शन भी माया को शून्य के सदृश कहता है। (देखो ज्ञानसंकलिनी तंत्र, पद्य ५४)। [देखो टिप्पणी]।

माना है। आगे चलकर शून्यवाद का उल्था अभाववाद के
—धर्म में ; असत्सिद्धांत के रूप में किया गया, पर इसके प्रवर्तक बुद्ध नहीं कहे जा सकते[1]। क्योंकि बुद्ध उपनिषद्-प्रतिपादित धर्म के अनुयायी थे, इस बात को वे शब्द स्पष्टता के साथ प्रकट कर रहे हैं जो बुद्धगया के प्रसिद्ध बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त होने के समय उनके मुख से निकले थे। उन वचनों में बुद्ध ने अपना वही मत प्रकट किया है[2] जो वेदांत का है अर्थात् आत्मा ही ब्रह्म है और इसी बात का ज्ञान हो जाने से मोक्ष मिल सकता है। उन्होंने कहा है—" ऐ शरीर

---

१ बौद्ध-साहित्य में जो मोक्ष के लिए निर्वाण शब्द प्रयुक्त हुआ है वही इस असत्सिद्धांत की उत्पत्ति का कारण है। निर्वाण बुद्ध का स्वनिर्मित शब्द नहीं है वरन् यह बौद्ध-धर्म से पहले हिंदू-दर्शनों में प्रयुक्त हो चुका है। वहाँ इसका अर्थ विनाश नहीं है। [देखो टिप्पणी]।

२ यह विश्वास पहले से स्थापित सत्य का केवल उद्गार अथवा कथन था। सभी वैदिक ऋषियों और पूर्वबुद्धों ने इसकी घोषणा की थी। (देखो Warren : ' Buddhism in Translations, ' Harvard Series, p. 83)।

के स्रष्टा ! मैंने तुझे देख लिया है, अब तू मुझे विभिन्न योनियों में उत्पन्न न करेगा[1]। " इस प्रकार की उक्ति, जो बौद्धों के लिए एक तरह की पहेली थी,[2] केवल वे ही लोग समझ सकते हैं जो हिंदू-धर्म के तत्त्वों के ज्ञाता हैं अर्थात् उपनिषदों के रहस्य से अभिज्ञ हैं, योग के तत्त्व को समझते हैं[3]। उपनिषदों के

निष्काम-कर्मिन्

---

१ धम्मपद ११-९। मिलाओ Monier Williams: 'Buddhism,' पृष्ठ ३८.। [देखो टिप्पणी]।

२ मिलाओ Knighton का 'History of Ceylon,' पृष्ठ ६७।

३ उपनिषदों के दार्शनिक मत से आत्मदर्शन अथवा आत्म-ज्ञान द्वारा आत्मा को देखना मोक्ष-प्राप्ति का एक-मात्र मार्ग माना गया है। (तैत्तिरीयोपनिषद् २-१ ; श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-२५)। [देखो टिप्पणी]। योग का अभ्यास करनेवालों को ज्ञात होगा कि ध्यान के द्वारा, जिसका अभ्यास बुद्ध ने किया था, अलौकिक दृश्य देखे जा सकते हैं। इस ढंग से अलौकिक दृश्य देखना योग-दर्शन में शांभवी मुद्रा के नाम से प्रख्यात है और इसलिए इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है कि यह मोक्ष-प्राप्ति का निश्चित पथ है। (देखो हठयोग-प्रदीपिका, ४-३५ ; घेरंडसंहिता ३-५९ से ६२)। [देखो टिप्पणी]। व्यामोह की

ऋषियों[1] की भाँति बुद्ध ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि मोक्ष का सच्चा मार्ग सद्ज्ञान और सत्कर्म के युगपद् अभ्यास पर ही आश्रित है[2]। इसके अतिरिक्त और आगे बढ़कर उन्होंने इस बात को भी माना है कि सत्कर्म समस्त कामनाओं के पूर्ण विराम की ओर ले जानेवाला है। निष्काम कर्म[3] के इसी सिद्धांत का उपदेश बुद्ध से बहुत

इन अद्वितीय अवस्थाओं का साहचर्य बहुधा बड़ा विचित्र होता है और इनके संबंध में विभिन्न व्यक्तियों की अनुभूति का विचित्र सादृश्य भी है। (देखो James : 'Psychology,' Vol. II, p. 130)। अस्सीसी के सेंट फ्रांसिस ने, जिसने इसी प्रकार से ईसा मसीह का दर्शन किया था, तत्काल अपने नखों से हाथों और पैरों को नोच डाला था। (मिलाओ S. Baring-Gould : 'Lives of the Saints,' Vol. XI, p. III)।

१ मिलाओ ईशावास्योपनिषद्, मंत्र २ [देखो टिप्पणी]।

२ धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र में जीवन-पथ के मध्य में बुद्ध सदाचार के साम्राज्य की नींव डालते हैं, जिसका पर्यवसान सत्कर्म और सद्भाव में होता है। देखो Rhys Davids : 'Buddhist Suttas,' p. 147.

३ तन्हावाद (संस्कृत—तृष्णावाद) अथवा पिपासा (या अभिलाषा) के सिद्धांत का बौद्ध-धर्म में वही कार्य-क्षेत्र है जो हिंदू-धर्म में। बौद्ध-धर्म के अनुसार अभिलाषा ही सृष्टि का

पहले हिंदुओं के आध्यात्मिक ग्रंथ योगवासिष्ठ और महाभारत के द्वारा भी दिया गया है। विशेषतः महाभारत के उन अध्यायों में जिनका नाम श्रीमद्भगवद्गीता है। यह उपदेश वहाँ निष्काम कर्म के ही नाम से प्रख्यात है।

मूल है; और वेद भी कहते हैं—"इसमें प्रथम अभिलाषा का उदय हुआ जो सबसे पहला बीज था।" (ऋग्वेद, नासदीय सूक्त, १०-१२९-४), [देखो टिप्पणी]।

द्वितीय अध्याय

हिंदू स्वयं बुद्ध के अनुयायी थे

जिस प्रकार इस बात के कितने ही प्रमाण हैं कि बुद्ध अति प्राचीन वैदिक धर्म की ही उपज और स्वयं हिंदू थे, ठीक उसी प्रकार इसके भी कितने ही प्रमाण हैं कि आरंभ में स्वयं सनातनी हिंदू ही उनका पूजन करते थे और बौद्ध-धर्म के आरंभिक रूप में कोई धर्म-विरोधी बात उसमें नहीं दिखलाई पड़ती थी। उक्त प्रमाण इसलिए अत्यंत पुष्ट हैं कि वे हिंदुओं के उन पवित्र धार्मिक ग्रंथों में पाए जाते हैं, जिनके वचनों को स्वयं हिंदू सबसे अधिक आप्त मानते हैं[1]।

---

१ देखो 'बुद्धगया-माहात्म्य' नाम्नी पुस्तिका।

सर्वप्रथम बुद्ध को हिंदू-मात्र सर्व-संमति से नारायण अथवा ईश्वर का अवतार[1] मानते हैं। वे सदाचार के

बुद्ध, हिंदुओं के एक अवतार

उस साम्राज्य का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए थे, जो उस समय दुर्जनों के हाथों में पड़ गया था[2]। स्वयं बौद्ध इस बात को मानते हैं कि उनके बुद्ध हिंदुओं के नारायण[3] हैं।

---

१ मत्स्यपुराण ४७-२४७ ; कल्किपुराण २-३-२६ ; वायुपुराण, एकलिंग माहात्म्य, १२-४३ ; १४-३९ ; गरुड़पुराण ८६-१० ; वाराहपुराण ४-२ ; ११२-२७ ; नृसिंहपुराण ३६-२९। [मूल वचनों और अन्य स्थलों के लिए, देखो टिप्पणी]।

२ श्रीमद्भगवद्गीता में सभी अवतारों का यही कार्य कथन किया गया है (अध्याय ४, पद्य ७-८)। मिलाओ भागवत-पुराण १-३-२८ ; गरुड़पुराण १-१४९-३९ ; मत्स्यपुराण ४७-२४७। [मूल वचनों और अन्य-स्थलों के लिए, देखो टिप्पणी]।

३ ललितविस्तर, अध्याय ७ और पुनः अध्याय १५ [देखो टिप्पणी]। मिलाओ राजेंद्रलाल मित्र : 'Buddh-Gaya' पृष्ठ ६।

यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि क्षेमेंद्र, जो निश्चित बौद्ध लेखक है, अपने 'दशावतारचरितम्' में बुद्ध को हिंदुओं का एक अवतार मानता है। (मिलाओ Foucher :— 'Ksemendra : Le Buddavatara.'—Journal Asiatique, Paris, 1892, Serie 8, Vol. XX, p. 107 ff)। उक्त बुद्ध

बुद्ध का पूजन हिंदू उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार अन्य अवतारों का और इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं कि बुद्ध के आरंभिक उपासक स्वयं हिंदू ही थे, और कोई नहीं।

और उनके उपास्य देव :—मूर्ति-पूजा से

हिंदुओं की उपासना-विधि के अनुसार बुद्ध की मूर्त्तियों के निर्माण की आज्ञा दी गई है और उनके निर्माण के आदेश में बताया गया है कि मूर्त्ति में दो हाथ और बड़े-बड़े कान हों, उन्हें समाधि की मुद्रा में, योगियों के पद्मासन के रूप में बैठाया तथा उन्हें संन्यासियों[1] के से दो काषाय वस्त्र पहनाए जायँ। ये सब बातें उन्हें हिंदू-साधु सूचित करती हैं यह प्रसिद्ध भी है कि वे अपने जीवन-काल में साधु-वेश

—शालग्राम-पूजा ; तथा तिलक-धारण से

के पहले भी कई बुद्ध हो गए हैं पर वे नारायण का अवतार नहीं माने जाते। मिलाओ योगवासिष्ठ, वैराग्य-प्रकरण, २६-२९; महाभारत, शांतिपर्व २८५-३२; महापरिनिर्वाण सूत्र, अध्याय ५; ललितविस्तर, अध्याय १२; लंकावतार सूत्र। (कुछ पूर्व-बुद्धों की एक सूची प्रिंसेप के 'Useful Tables' पृष्ठ २२९ में दी हुई है)। [देखो टिप्पणी]।

१ हिंदुओं की 'संन्यास' की परंपरा में बुद्ध दत्तात्रेय

में रहा करते थे[1]। इस बात का भी स्पष्टतः उल्लेख पाया जाता गया है कि पूजनार्थ तांत्रिक विधि से निर्मित इन मूर्तियों की पूजा सनातनी हिंदू जनता करे[2]। हिंदू-प्रतिमा-पूजन की प्रचलित विधि के अनुसार एक विशेष प्रकार का शालग्राम अथवा पवित्र प्रस्तर-खंड बुद्ध के प्रतीक के लिए निर्दिष्ट किया गया है[3]। इसके अतिरिक्त इसका भी विधान है कि बुद्ध के उपासक सनातनी हिंदू अपने संप्रदाय की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए अपने मस्तक पर

के और शंकराचार्य बुद्ध के उत्तराधिकारी थे । [देखो टिप्पणी]।

१ लिंगपुराण २-४८-२८ से ३३ ; अग्निपुराण ४९-८ ; भविष्यपुराण २-७२ ; हेमाद्रि : व्रतखंड का अध्याय १ (जहाँ विष्णु भगवान् के २४ अवतारों का वर्णन है); हेमाद्रि : व्रतखंड का अध्याय १५ । [मूल वचनों तथा अन्य स्थलों के लिए देखो टिप्पणी] ।

२ सूतसंहिता ४-३-२१; और सूतगीता ८-४५ । [देखो टिप्पणी] ।

३ हिंदू-शास्त्रों में विशेष प्रकार के देव-पूजन के लिए विशेष प्रकार के प्रतीकों का विधान है। बुद्ध का प्रतीक एक विशेष प्रकार का शालग्राम पत्थर है। देखो ब्रह्मांडपुराण । [देखो टिप्पणी]।

एक विशेष प्रकार का तिलक भी धारण करें[1]। हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों ने बड़े विधि-विधान से बुद्ध-पूजन का प्रकार लिखा है। इनमें प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक के अनुष्ठानों की विधियाँ दी हुई हैं। वे इस प्रकार हैं—बुद्धप्रातःस्मरणम् अर्थात् बुद्ध की प्रभातकालीन वंदना[2], बुद्धध्यानम्[3], बुद्ध-व्रत-पूजा

—प्रातः स्मरण से
—ध्यान से
—व्रत-पूजा से

---

१ सूतसंहिता : सूतगीता ८-२४। [देखो टिप्पणी]।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि बुद्ध भारत के अन्य उपदेशक साधुओं की भाँति अपने मस्तक पर तिलक धारण करते थे। यह बात उनकी पत्थर की अनेक मूर्त्तियों से प्रमाणित होती है। वे मस्तक पर गोल तिलक धारण करते थे। (देखो अंत में पहले चित्र का विवरण)। इसकी सबसे अधिक पुष्टि बराबुदुर (जावा) की मूर्तियों से होती है। वहाँ की मूर्तियों में तिलक और यज्ञोपवीत दोनों के चिह्न बने हुए हैं। इसलिए मस्तक पर तिलक धारण करनेवाली मूर्तियों की पूजा करनेवाले सचमुच हिंदू ही हैं। जावा की मूर्तियों से बौद्ध-धर्म का वह आरंभिक रूप प्रकट होता है, जब वह हिंदू-धर्म से पृथक् नहीं हुआ था। (देखो अंत में दूसरे चित्र का विवरण)।

२ गरुड़पुराण २-२१-२५ ; भागवतपुराण १-३-२४ से २९। [देखो टिप्पणी]।

३ अग्निपुराण ४९-८; मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण ३६, शंक-

अर्थात् उनकी कथा का पाठ करना (या दूसरे से उनकी कथा सुनना) और समय-समय पर उपवास और उत्सव करना[1]; बुद्ध-गायत्री अर्थात् बुद्ध के जपने का मंत्र[2]; बुद्ध-मंत्र[3]; बुद्ध-नमस्कार[4]। इसके अतिरिक्त बुद्धगया को, जहाँ

—गायत्री से
—मंत्र से
—नमस्कार से

राचार्य-कृत दशावतार का श्लोक। [देखो टिप्पणी]।

१ अग्निपुराण १६-१ ; गरुड़पुराण १-२-३२ ; १-१४९-३९, वाराहपुराण २११-६५ से ६६ ; ४८-२२ ; ४९ (संपूर्ण अध्याय); भविष्यपुराण २-७२ (अध्याय में दो बार); हेमाद्रि : 'व्रतखंड' अध्याय १५ ; निर्णयसिंधु, अध्याय २। [मूल वचनों और अन्य स्थलों के लिए देखो टिप्पणी]।

२ लिंगपुराण : २-४८-२८ से ३२। [देखो टिप्पणी]।

३ मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण, ३६। [देखो टिप्पणी]। बुद्ध के विविध मंत्रों के लिए देखो तारातंत्र (Barendra Research Society Series, No. 9)।

४ भागवतपुराण १०-४०-२२ ; कूर्मपुराण ६-१५, और १०-४८ ; वायुपुराण ३०-२२५ ; वाराहपुराण ५५-३७ ; पद्म-पुराण, क्रियाखंड, ६-१८८ ; ११-९४ ; पद्मपुराण, सृष्टिखंड ७३-९२ ; गर्गसंहिता, विश्वजित् खंड १३-४९ ; मेरुतंत्र, अव-तार-प्रकरण, ३६। [मूल वचनों और अन्य स्थलों के लिए देखो टिप्पणी]।

उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था, सनातनी हिंदू-जनता अपना तीर्थ मानती है और धर्म-ग्रंथों[1] के आदेशानुसार वहाँ पितरों को पिंड-दान करने के लिए बहुसंख्या में एकत्र होती है।

—तीर्थयात्रा से

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि बुद्ध के जन्म के बहुत पहले से हिंदुओं में पिप्पल (पीपल) का पूजन होता है एवं बोधि-तरु सदा से पीपल का पर्याय है और बुद्धगया का वास्तविक नाम बोधि-गया है, बुद्धगया नहीं तथा यह नाम भी इसी बोधि-वृक्ष के कारण पड़ा है, बुद्ध के कारण नहीं। इसके अतिरिक्त वे इसी आधार पर यह तर्क भी करते हैं कि हिंदू बुद्धगया की यात्रा में केवल बोधि-तरु का पूजन करते हैं, बुद्ध का नहीं।

कुछ आक्षेपों का उत्तर :—

इस विचार में सत्य की चाहे जितनी प्रतीति होती हो,

---

१ बृहन्नील तंत्र ५ : स्कंधपुराण, अवंती खंड, ६८-२० ; ७०-४ : वायुपुराण २-४९-२६ से २९ (२-४९-२१ से २४ तक भी, यह कुछ ही संस्करणों में मिलता है)। अग्निपुराण ११५-२७। [देखो टिप्पणी]।

पर यह मान्य नहीं हो सकता। यह ठीक है कि हिंदू-समाज में उक्त वृक्ष अज्ञात काल से पवित्र समझा जाता है और बुद्ध ने अपने परम आवश्यक भक्ति-कार्य के लिए इसके नीचे आसन लगाना निर्धारित करके अपने को विशेष रूप से एक सच्चा हिंदू सिद्ध किया है[1]। अब बोधि-तरु शब्द को लीजिए। इसके विषय में यही कहा जा सकता है कि सभी स्थलों में इसका पीपल का पर्याय होना नहीं सिद्ध होता। पीपल के पर्याय रूप में यह शब्द केवल अमरसिंह के कोश[2] में ही मिलता है। अमरसिंह एक प्रसिद्ध बौद्ध थे। बौद्धों से पहले के साहित्य में कहीं भी उक्त कथन की पुष्टि नहीं पाई

(१) वृक्ष और बुद्ध

वृक्ष का नाम बुद्ध से निकला है

---

१ वेदों में सर्वप्रथम यज्ञ की अग्नि दो सूखी लकड़ियों को रगड़कर उत्पन्न की जाती थी। यह लकड़ी अश्वत्थ (पीपल) की ही होती थी। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की लकड़ी को जो यह संमान प्रदान किया गया है, वही हिंदुओं द्वारा उसके पवित्र माने जाने का कारण है। बुद्ध ने जो उक्त वृक्ष का आदर किया वह उनका हिंदू-धर्म के अंतर्गत होना ही प्रमाणित करता है। (देखो Rhys Davids : ' Buddhist India, ' p. 23)।

२ अमरकोश : २-४२-१ ।

जाती। आज तक कोई अन्य पीपल-वृक्ष, वह चाहे बुद्ध-गया में हो चाहे अन्य स्थान में, बोधि-तरु के नाम से नहीं पुकारा जाता। केवल उसी वृक्ष की यह संज्ञा है जिसके नीचे बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। इसलिए कोश में बोधि-तरु पद सभी पीपलों के पर्याय के विचार से नहीं रखा गया है, वरन् वह केवल उसी वृक्ष के लिए आया है जो इतना प्रख्यात हो चुका था कि उसका नाम कोश में रखना उचित समझा गया। बुद्धगया स्थान के संबंध में यह बताना है कि वह पहले 'उरुवेला-वन'—(शुद्ध रूप—उरुविल्व-वन) के नाम से विख्यात था। इसका अर्थ है 'उरुविल्व नामक ग्राम का जंगल'। अब इसका नाम 'उरेल' है। यह स्थान वृक्ष की ही भाँति अपना आधुनिक नाम बुद्ध से बनना सिद्ध करता है, जो उचित ही है, क्योंकि उन्होंने ही इसे विश्व-भर में विख्यात कर दिया है[1]।

---

१ बुद्धगया-मंदिर के दक्षिण में एक पोखर (पुष्कर = तालाब) है। इसके विषय में कहा जाता है कि इसमें बुद्ध स्नान किया करते थे। इस तालाब का नाम है बुद्ध-पोखर। यह पहले जितना लंबा-चौड़ा बनाया गया था उससे इसकी लंबाई-चौड़ाई अब अधिक है, क्योंकि इसके निर्माण के बहुत समय बाद मंदिर

इसके अतिरिक्त यह विचार भी पुष्ट नहीं है कि हिंदू बोधि-तरु की ही पूजा करते हैं, बुद्ध की नहीं। हिंदू-धर्म-शास्त्र स्पष्टतः लिखते हैं कि पूजक प्रथम धर्म और धर्मेश्वर की पूजा करे और तदनंतर बोधितरु की[1]। उपर्युक्त स्थल में 'धर्मेश्वर' पद का अर्थ है बुद्ध। बुद्ध का मत भारत में धर्म के नाम से विख्यात था और बुद्ध धर्मेश्वर, धर्मराशि, धर्मपाल आदि नामों से प्रसिद्ध थे[2]।

—हिंदू बुद्ध की पूजा पहले करते हैं और वृक्ष की पीछे

के बनवाने में उसमें की बहुत-सी मिट्टी निकाल ली गई है। (देखो The Imperial Gazetteer of India; 'Bengal,' Vol. II, p. 50)। वस्तुतः बुद्ध के ही नाम पर उक्त तालाव का यह नाम पड़ा है; इस बारे में कोई विवाद नहीं है। अतः कोई कारण नहीं ज्ञात होता कि वृक्ष और स्थान के नामों के संबंध में एक नया विवाद खड़ा किया जाय और उनकी व्युत्पत्ति किसी दूसरे से ही निकाली जाय। हरवर्ड (Harvard) विद्वानों के अनुसार बोधि-तरु (बो-तरु) का अर्थ होता है—"वह वृक्ष, जिसके नीचे किसी बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया है।" (देखो Warren's 'Buddhism in Translations,' p. 499)।

१ वायुपुराण २-४९-२६। [देखो टिप्पणी]।

२ ललितविस्तर, अध्याय ७। [देखो टिप्पणी]। "धर्म

अमरकोश में बुद्ध का एक पर्याय 'धर्मराज' मिलता है[1]। और यह बात भी प्रख्यात है कि बंगाल के कुछ विभागों में तथा भारत के और-और प्रांतों में वैष्णवों की एक

(संस्कृत) अथवा धम्मो (पाली) बौद्ध-मत के तीन बड़े विभागों में से एक है। पाली लेखों में स्वयं बुद्ध बहुधा धम्मो (धर्म) के नाम से पुकारे गए हैं। अशोक के समय में इस मत का निर्देश करने के लिए सामान्यतः धम्मो शब्द का ही व्यवहार किया जाता था। धर्मेश्वर धर्म का मूर्तिमान् देवता है। यदि धर्म को बौद्ध-मत माना जाय तो धर्मेश्वर विशेषण उक्त मत के अधीश्वर अथवा बुद्ध का ही होगा।"—Sherring: 'Benares,' पृष्ठ ८५-८६ (अध्याय ५)। मिलाओ धर्म-मंदिर, धर्मवापी, धर्मकूप शब्द तथा धर्म अशोक एवं धर्म-राशि नाम (Sherring, पृष्ठ २५१)।

मिलाओ Paul Carus: 'The Dharma: an exposition of Buddhism,' (शिकागो)। मिलाओ बौद्धों का स्तुति-मंत्र; 'मैं धर्म की शरण में जाता हूँ' [देखो टिप्पणी]। [देखो Waddell: 'The Refuge Formula' of the Lamas.' (Indian Aatiquary, Bombay, 1894; Vol. XXIII; p. 73-76)]।

१ अमरकोश १-१-१-८; वैजयंती-कोश; १-१-२३। [देखो टिप्पणी]।

शाखा धर्मठाकुर की पूजा करती है। यह बुद्ध-पूजा का ही एक रूप है[1]।

यहाँ पर हिंदुओं के बौद्ध-मंदिर-गमन-निषेध तथा सम-कालीन दो बुद्धों के होने के संबंध में भी कुछ कहना समीचीन जान पड़ता है। जो वचन इस विषय में प्रमाण माना जाता है वह हिंदुओं को केवल जैन-मंदिरों में जाने का निषेध करता है[2] ("न गच्छेत् जैनमंदिरम्"-जैनों के मंदिरों में न जाना चाहिए)। जैनों एवं बौद्धों का अंतर प्रख्यात है[3]। पूर्वोक्त निषेध के संबंध में एक दूसरे

(२) जैन और बौद्ध-मंदिर

---

१ इस विषय पर महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री (सभापति एशियाटिक सोसाइटी) ने बड़ी योग्यता और सुचारुता के साथ प्रकाश डाला है।

२ यह वचन प्रामाण्य होने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रक्षिप्त जान पड़ता है। इसका पता निश्चयात्मक रूप से कहीं भी नहीं चलता।

३ जैन-मंदिरों की मूर्तियों का सदैव नग्न रहना नियमानुसार आवश्यक है पर बुद्ध की सभी मूर्तियाँ वस्त्र पहने हुए देखी जाती हैं। [मिलाओ Leon Feer : 'Tirthikas et Bouddhistes,' Leiden. 1885. (Transaction of the International Congress of Orientalists, part 3, section 2)]। [देखो टिप्पणी]।

वचन से भ्रांति उत्पन्न होती है, जो बुद्ध को जिनसुत अर्थात् जिन का पुत्र बतलाता है ('बुद्धनाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति'—बुद्ध नामक जिनसुत कीकट देश में होंगे)[1]। जैन शब्द का भी अर्थ है जिन का पुत्र। इसी कारण आरंभ में अर्थ के विचार से जैन-मंदिर पद से जैनों के मंदिरों के साथ-ही-साथ बौद्ध-मंदिरों का ग्रहण हो जाना संभव है, परंतु बुद्ध हिंदू-पिता के पुत्र थे और क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुए थे; वे किसी प्रकार जिन के पुत्र नहीं कहे जा सकते[2]। इसके अतिरिक्त जिन वचनों में जिनसुत पद पाया जाता है वे हिंदुओं के लिए बौद्ध-मंदिरों में जाने का निषेध नहीं करते। वरन् इसके विरुद्ध हिंदुओं के लिए प्रातःकाल उठते ही बुद्ध के स्मरण का विधान करते हैं।—

—हिन्दुओं के लिए केवल जैन-मंदिरों में जाने का निषेध

("कलियुग के आरंभ में बुद्ध नामक जिनसुत कीकट देश में होंगे। प्रत्येक युग में जब दुष्टों का प्राबल्य हो जाता है तब वे लोक में शांति-स्थापन करने के लिए आते हैं। जो प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल संमानपूर्वक उनकी कथा का पाठ

---

१ देखो आगे, पृष्ठ ५७; पृष्ठ ६४।

२ देखो ऊपर, पृष्ठ १५।

करता है वह सभी दुःखों से छूट जाता है[1]।" "कलियुग के आरंभ में बुद्ध नामक जिनसुत कीकट देश में उत्पन्न होंगे। समस्त सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न हुई है। व्रतादि के अनुष्ठानों के द्वारा उनका पूजन करना चाहिए[2]। "बुद्धिमान् लोग दश अवतारों में बुद्ध का नाम भी सदैव स्मरण करते हैं[3]।") इसलिए अब जिनसुत पद का कोई दूसरा अर्थ ढूँढ़ निकालना चाहिए। परम प्रामाणिक 'मेदिनी' कोश के अनुसार जिन शब्द का एक पर्याय है भगवान् अर्थात् ईश्वर (भगवान् ना जिने)[4]। इस प्रमाण के आधार पर जिनसुत पद का अर्थ होगा भगवान्

—जिनसुत जैन नहीं है

---

१ भागवतपुराण : १-३-२४ से २९ [देखो टिप्पणी]।

२ गरुड़पुराण : १-२-२२ [देखो टिप्पणी]।

३ गरुड़पुराण : २-३१-२५ [देखो टिप्पणी]।

४ मेदिनी कोश (तांत शब्द,) २१५)। जिन शब्द के विष्णु (ईश्वर) अर्थ के लिए देखो हेमचंद्र २-१३०; हलायुध १-२५ (और Aufrecht's Glossary, p. 222); सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी (इसी शब्द के विवरण में); शब्द-कल्पद्रुम (इसी शब्द के विवरण में) आदि भी। [देखो टिप्पणी]।

का पुत्र । अब इसका तात्पर्य हुआ नारायण का अवतार । बुद्ध सब प्रकार से ईश्वर के अवतार माने गए हैं[1] । उक्त ग्रंथों में यह पद वस्तुतः इसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है और यही अर्थ होना आवश्यक भी जान पड़ता है, विशेषतः ऐसी दशा में जब वे ग्रंथ ऐसे प्रकरणों से भरे पड़े हैं जिनसे यही अर्थ निकलता है और इसी अर्थ की पुष्टि भी

---

१ देखो ऊपर, पृष्ठ ४१ से । विष्णु अर्थात् भगवान् का दूसरा नाम है जिष्णु । यह शब्द उसी धातु से निकला है जिससे जिन और इसका अर्थ भी वही है जो जिन का अर्थात् विजेता अथवा स्वामी । [देखो टिप्पणी] । कभी-कभी बुद्ध के लिए जिन, जिनेंद्र और जैत्र शब्द भी प्रयुक्त होते हैं । ये शब्द किसी संप्रदाय-विशेष का निर्देश करने के लिए नहीं प्रयुक्त होते, वरन् केवल 'विजयी' (शक्तिमान्) का भाव द्योतन करने के लिए ही इनका व्यवहार होता है । यादव-प्रकाश के वैजयंती-कोश में जिन शब्द दो बार भिन्न-भिन्न स्थानों में आया है, एक बार बुद्ध के लिए और दूसरी बार अर्हत् अथवा जैनों की तीर्थिका के लिए (ऑपर्ट संस्करण, पृष्ठ ५) । सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी में ' जिन-पुत्र ' का अर्थ ' बोधिसत्त्व ' लिखा है । इस शब्द का अर्थ ' प्राचीन बुद्धों का उत्तराधिकारी ' भी हो सकता है, क्योंकि ' जिन ' शब्द का अर्थ है बुद्ध—(अमरकोश १-१-१-८ से) ।

होती है अर्थात् " प्रत्येक युग में जब दुष्टों का प्राबल्य हो जाता है तब वे संसार में शांति-स्थापन करने के लिए अवतरित होते हैं। " ये अवतरण ठीक वे ही हैं जो केवल अवतारों के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार जिन-सुत का अर्थ है अवतार, न कि जैन। अतः जो वचन हिंदुओं को जैन-मंदिरों में जाने से मना करता है उसका तात्पर्य जिनसुत अथवा बुद्ध के मंदिरों में जाने का निषेध नहीं हो सकता।

(३) समकालीन दो बुद्धों के सिद्धांत का खंडन

कुछ लोगों का यह सिद्धांत[१] नितांत भ्रमात्मक है कि दो समकालीन बुद्ध हुए हैं—एक हिंदुओं के और दूसरे बौद्धों के। जिनसुत-संबंधी सभी वचनों में कीकटेषु शब्द का बहुवचन (अर्थात् "बुद्धनाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति" —बुद्ध नामक जिनसुत कीकट देश में होंगे) इस संबंध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक ही

१ Prinsep: 'Indian Antiquities,' Vol. II (Useful Tables, p. 164);—प्रोफेसर विल्सन के विचार, Oriental Magzine, १८२५; —Patel's Chronology। [देखो टिप्पणी]।

मनुष्य एक ही समय में बहुत से स्थानों में उत्पन्न नहीं हो सकता। इस कारण उक्त वचन में जो 'भविष्यति' (अर्थात् होगा) शब्द प्रयुक्त हुआ है वह शाक्यसिंह के जन्म से संबंधित नहीं है, वरन् वह 'बुद्ध की उपाधि' धारण कर लेने पर उनके कार्यारंभ करने का निर्देश करता है[१]। इसलिए उक्त वचनों का अर्थ है—कपिलवस्तु में होनेवाला ईश्वरावतार (जिनसुत) बुद्ध की उपाधि धारण करने के उपरांत (बुद्धनाम्ना) कीकट देश के बहुत से

---

१ मिलाओ ललितविस्तर, अध्याय २५ : (पृष्ठ ४००, लेफमैनवाला संस्करण, पंक्ति १९) :—"सज्जन लोग मगध देश में (मगधेषु) धर्म की वार्ता सुनते हैं।" यहाँ मगधेषु (यह भी बहुवचन) ऊपर के उद्धरणों में आए हुए कीकटेषु का पूरा-पूरा समानार्थी है। [देखो टिप्पणी]। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि बुद्ध का जन्म-दिवस (बुद्ध-जयंती) वही दिन माना जाता है जिस दिन उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था। इसलिए उनका जन्म-स्थान भी वही स्थल माना जाता है जहाँ उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था अर्थात् बुद्धगया, जो कीकट देश में है। हिंदू लोग ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति को नव-जीवन समझते हैं; मिलाओ 'द्विज' शब्द, इसका अर्थ है 'जिसका दो बार जन्म हो'। (ब्राह्मण अर्थात् जिसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है)।

स्थानों (कीकटेषु) में पधारेगा[१] (भविष्यति) और उन्हें अपना कार्य-क्षेत्र बनाएगा ।

हिंदुओं के नवें अवतार बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने नास्तिकों को उन्हीं के अनीश्वरवादी विचारों में विशेष रूप से संलग्न कराया था (संमोहाय सुरद्विषाम्)[२] । उन्होंने विचारा कि नास्तिक अपने ही अनीश्वरवाद के द्वारा पर्याप्त दंड पा जायँगे । नास्तिकता की अत्यंत अधिकता हो जाने पर स्वभावतः उसी से आस्तिकता का प्रतिवर्तन होगा[३] ।

बुद्ध के मायावी कृत्यों के ग्रहण करने की समस्त कथा और उसके द्वारा सिद्ध किया जानेवाला अभिप्राय हिंदुओं के प्रामाणिक ग्रंथ विष्णुपुराण में वर्णित है[४] । नारद-पंचरात्र भी उसी बात को इस प्रकार लिखता है :—
" बुद्ध ने नास्तिकों को सर्वशून्यवाद की शिक्षा देकर

---

१ देखो राजेंद्रलाल मित्र : 'Buddha-Gaya,' पृष्ठ ६ ।

२ भागवतपुराण १-३-२४ ; गरुड़पुराण १-२-३२ ; वही, १-१४९-३९ [देखो टिप्पणी] ।

३ मिलाओ सूतसंहिता : ब्रह्मगीता, अध्याय ४,—पद्य ६६,६७,७० [देखो टिप्पणी] ।

४ विष्णुपुराण ३-१८-१५ से । [देखो टिप्पणी] ।

संमोहित किया था। इस प्रकार इन्होंने छल करके उन्हें वेदों से परे रखा और उनके द्वारा वेदों को नष्ट एवं प्रक्षिप्त होने से बचाया। इन्होंने सबके साथ यथा-योग्य व्यवहार किया। नास्तिकों को उन्हीं के अनीश्वर-वादी विचारों में अधिक संलग्न करके आस्तिकों के हित के लिए वेदों को सुरक्षित रखा[1]।" तंत्रसार का कथन है कि दुष्टों का बल हरण करने के लिए बुद्ध ने स्पष्ट रूप से अपने शून्यवाद के अचूक सिद्धांत का प्रयोग किया था[2]। ललितविस्तर में निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है :—"उन्होंने शून्यवाद और अंत में निरात्मवाद के सिद्धांत को ग्रहण करके सब बखेड़ों का अंत कर दिया[3]।" यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि बुद्ध ने शून्य-वाद के जिस सिद्धांत का प्रयोग नास्तिकों पर किया था, वह वेदों के ही आधारभूत है। वह प्रत्यक्षतः तो शून्यवाद है, किंतु वस्तुतः उसमें वेदों के मायावाद का प्रतिपादन किया

---

१ नारद-पंचरात्र ४-३-१५६ से १५९। [देखो टिप्पणी]।

२ तंत्रसार, अध्याय ४ : विष्णु-संबंधी मंत्र में, पद्य ९। [देखो टिप्पणी]।

३ ललितविस्तर, अध्याय १२। [देखो टिप्पणी]।

गया है।[१] इस कारण वे मायावी (मायिन्)[२] कहे गए हैं। कुछ लोग इसी आधार पर यहाँ तक कह बैठते हैं कि हिंदुओं के लिए बुद्ध का मत और उनका पूजन इसी हेतु निषिद्ध कहा गया है। पर यह विचार गलत है। दुष्टों को माया के जाल में फँसाकर संसार का हित-साधन करने के उदाहरण हिंदू-शास्त्रों के लिए कोई असाधारण बात नहीं हैं। ऐसा करने के लिए कभी भी कोई न तो मायावी की निंदा करता है और न उसे दोष ही देता है[३]। केवल बुद्ध ही नहीं वरन् अन्य अवतार भी संसार का हित करने में

---

१ मिलाओ ऋग्वेद-संहिता :—१०-७२-२ ; १०-१२९-७। छांदोग्योपनिषद् :—६-२-१; तैत्तिरीयोपनिषद् :—२-७। मिलाओ शारीरक-भाष्य :—२-४-१। [देखो टिप्पणी]।

२ कूर्मपुराण :—१०-४२; भागवतपुराण :—१०-४०-२२ ; महाभारत, शांतिपर्व का भीष्मस्तवराज भी [देखो टिप्पणी]।

३ असत्सिद्धांत द्वारा पथ-भ्रष्टता की ओर ले जाने का एक दृष्टांत देवी-भागवत में है (चतुर्थ स्कंध, अध्याय १० से १३); असत्सिद्धांत द्वारा निर्बल बनाने और सर्वनाश कर देने का दूसरा दृष्टांत मत्स्यपुराण में पाया जाता है, २४-३७ से ४९। [देखो टिप्पणी]।

दुष्टों को हानि पहुँचाने के लिए माया का प्रयोग करते हैं[१]; यह एक बहुत प्रसिद्ध बात है। श्रीकृष्ण भगवान् ईश्वरावतार के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं—"मेरे द्वारा प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं शुद्ध ज्ञान भी होते हैं और विमोह भी होता है अर्थात् सत्पथ का ज्ञान एवं पथ-भ्रष्टत्व दोनों ही प्राप्त होते हैं[२]।" उपनिषद् भी इसी बात की घोषणा इस प्रकार करते हैं:—"ईश्वर जिसका उत्थान करना चाहता है उसके चित्त में सत्कर्म करने की प्रेरणा करता है और जिसका सर्वनाश करना चाहता है उसके हृदय में असत्कर्म करने की प्रेरणा करता है[३]।" अतः यह विचार कभी भी समर्थनीय नहीं हो सकता कि नास्तिकों को असत्सिद्धांत का उपदेश करने के कारण शुद्ध हिंदुओं द्वारा धार्मिक असंमान के भागी हुए। विशेषतः जो ग्रंथ उन्हें दुष्टों को छलनेवाला कहते हैं, वे उन्हें इस हेतु निंदनीय नहीं समझते, वरन् वे इसीलिए उनके पूजन

---

१ शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमार-खंड :—९-२५ [देखो टिप्पणी]।

२ भगवद्गीता : १५-१५ (यहाँ 'अपोहन' शब्द का अर्थ है मतिशून्यता अथवा विस्मृति)। [देखो टिप्पणी]।

३ कौशीतकी उपनिषद् :—३-९। [देखो टिप्पणी]।

का विशेष रूप से विधान करते हैं[१]। जिन वुद्ध ने नास्तिकों को असत्सिद्धांत[२] की ओर झुकाकर उनके हाथों से वेदों की रक्षा की थी और जो वुद्ध हिंदुओं के धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार सभी प्रकार के संमानों और विधि-विधानों से पूजनीय हैं, वे दोनों वस्तुतः एक ही थे, यह वात हिंदू-धर्म-ग्रंथों से ही सिद्ध है। वौद्ध-धर्म के शून्यवाद को लेकर समकालीन दो वुद्धों की कल्पना करने के सिद्धांत का इस वात से भली भाँति खंडन हो जाता है और उनका यह कथन भी कट जाता है कि दूसरे प्रकार से इसका सामंजस्य वैठना वहुत कठिन है। जो कुमार शाक्यसिंह कपिलवस्तु में वोधिसत्त्व (अर्थात् जो वुद्धत्व प्राप्त करनेवाला हो) के रूप में जन्मे थे, वे वही हैं जिन्होंने कुछ समय के अनंतर कीकट देश में वुद्धत्व प्राप्त किया। आस्तिकों के कल्याण के निमित्त उन्होंने जो ज्ञान-लाभ किया था उसे कीकट

---

१ भागवतपुराण १-३-२४ से; वही १०-४०-२२; गरुड़पुराण १-२-३२; वही १-१४९-२९; कूर्मपुराण १०-४८; वायुपुराण ३०-२२५। [देखो टिप्पणी]।

२ मिलाओ भागवतपुराण ६-८-१७; गरुड़पुराण २०२-११। [देखो टिप्पणी]।

देश में स्थान-स्थान पर[1] भ्रमण करते हुए प्रचारित किया। इस कार्य में वे अपने विरोधी नास्तिकों और अन्य लोगों के झगड़े में नहीं पड़े[2]। जिस प्रकार राम अयोध्या में

---

१ [मिलाओ Waddell : 'Discovery of Buddhist Remains of Mount Uren in Monghyr district, and Identification of the site with a celebrated Hermitage of Buddha.' [एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८९३, भाग ६१, पृष्ठ १-२४)]।

२ "शाक्य ने अपना सारा जीवन अपने सिद्धांत का प्रचार करने में ही व्यतीत किया। यह जान पड़ता है कि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में अपने अनुयायियों का कोई भी संप्रदाय नहीं बनाया।" —Scenes in India (Oriental Annual) १८३५, पृष्ठ २४०। बुद्ध ने अपने सिद्धांत की शिक्षा देने में विनम्र और ज्ञान-गर्भित नीति का अवलंब लिया। वे कभी किसी प्रकार के धार्मिक झगड़े में नहीं पड़े और उन्होंने अपने विरोधियों का कभी भी विरोध नहीं किया। उनका ढंग अनुनय और सहिष्णुता से परिपूर्ण था। वे ऐसे लोगों को भी अपने संघ में प्रविष्ट कर लेते, जिनसे उनका विचार नहीं मिलता था। यह विख्यात है कि उन्होंने अपने मत में स्थविरों का एक संप्रदाय खुल जाने दिया था। यही नहीं, वे उस संप्रदाय के उपदेशों एवं उपदेशकों को आदर की दृष्टि से देखते तथा उन्हें स्थविर-सुभूति कहा करते। [देखो टिप्पणी]।

उत्पन्न होकर लंका में धर्म-प्रचार करने गए अथवा कृष्ण मथुरा में उत्पन्न होकर कुरुक्षेत्र में धर्म-प्रचार करने गए, ठीक उसी प्रकार कपिलवस्तु में जन्म लेकर बुद्ध ने कीकट देश में धर्म-प्रचार किया। कीकट देश का नाम आगे चलकर विहार पड़ा; क्योंकि वहाँ पर बौद्धों के समय में साधुओं के असंख्य मठ (जो देशी भाषा में विहार कहे जाते हैं) हो गए थे।[1]

दूसरा भ्रमात्मक विचार यह है कि विहार देश बहुत दिनों तक विदेशी बौद्धों के अधीन रहा है। इस कल्पना

उन्होंने सुभद्र नामक एक ऐसे भिक्षु को अपने मत में दीक्षित किया था जो आजीवन उनका विरोधी रहा। यह बात भी प्रसिद्ध है कि उनका शिष्य देवदत्त जो उन्हीं के साथ रहता था, सिद्धांत में उनका इतना विरोधी था कि उसने कई बार अपने गुरु का प्राण लेने तक का प्रयत्न किया और इतने पर भी वे सदैव उसे क्षमा कर देते और अपने ही साथ रखते भी। (देखो ऊपर, पृष्ठ २७ से)।

१ विंसेंट स्मिथ तथा अन्य विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत के इतिहास में कभी कोई बौद्धकाल नहीं था; क्योंकि बुद्ध की पूजा करनेवाले भारत के सभी बड़े-बड़े बौद्ध राजा हिंदू थे।

का मूल है 'मगध' शब्द। यह विहार प्रांत का दूसरा नाम है। इसके विषय में भ्रांतिवश यह अनुमान किया जाता है कि यह शब्द 'मौग' (बर्मी) से निकला है।

(४) मगध बौद्धों के शासन में कभी नहीं था

और ये ही मौग किसी समय इस देश का शासन करते थे। पर कीकट अथवा विहार प्रदेश का नाम 'मगध' मगों के संख्या-बाहुल्य के कारण पड़ा है। मग एक प्रकार के ब्राह्मण होते हैं (ये शाकद्वीपिन् भी कहलाते हैं)। ये लोग इसी प्रांत के निवासी हैं। इसके प्रमाण के लिए देखा जा सकता है कि इस देश के लिए 'मगध' शब्द बुद्ध से भी पूर्व व्यवहृत होता था। आगे चलकर यह देश विहार कहलाने लगा[1]।

यह भ्रमात्मक विचार आंशिक रूप में यात्रियों की

---

१ ललितविस्तर, अध्याय २५; महाभारत, भीष्मपर्व : ११-२६; विष्णुपुराण : २-४-६९; सांबपुराण : १६-८७ से ८८; पद्मपुराण, स्वर्गखंड, अध्याय ८, पद्य ३३ से ३४। [देखो टिप्पणी]।

[देखो सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी में मग (और मृग) शब्द; और मिलाओ Wilford: 'Asiatic Researches,' भाग ९, पृष्ठ ३२]।

इन कथाओं के कारण भी उठ खड़ा हुआ है जो तिब्बत के गया नामक ग्राम से संबंधित हैं (यह गाँव संभवतः तिब्बत के ग्यान्त्से प्रदेश में कहीं पर है)। तिब्बत का यह गया नामक ग्राम लामाओं और चीनियों[1] के हित का विरोधी था। इस विरोध के कारण यह भावना उत्पन्न हुई कि उस गाँव में बौद्धों की अधीनता में रहनेवाले हिंदू थे। भ्रांतिवश इस भावना से यह कल्पना उत्पन्न हुई कि भारत का गया किसी समय विदेशी बौद्धों के शासन में था और विशेषतः इसलिए कि इन दोनों स्थानों के दुर्गाकार भवन एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं[2]।

---

१ 'Huc's Travels,': Book II, Ch. 9, pp. 282-284।

२ बुद्धगया-मंदिर का प्राचीन नाम है गंधोल। तिब्बत के ग्यान्त्से प्रदेश में भी एक गंधोल है, जो बुद्धगया-मंदिर के ही आदर्श पर तिब्बत में बनाया गया है। देखो Waddell: 'Lhasa and its Mysteris,' पृष्ठ २२९ (मिलाओ O'Malley: 'Gaya,' पृष्ठ ५२, टिप्पणी)। इस मंदिर की एक नकल बर्मा में भी है। बर्मा के पागन का बौदीपया नाम बुद्धगया के बोधितरु से निकला है और उसका निर्माण बुद्धगया के विशाल मंदिर के ही नमूने पर हुआ है। (Ferrars: 'Burma,' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३३)।

अब रहा बुद्धगया। यह सदा से हिंदुओं के हाथों में रहा है। लंका के जो भिक्षु इस मंदिर में रहते थे, वे बौद्ध-संप्रदाय को माननेवाले हिंदू (वैष्णव) थे। १७९५ में हिंदुओं ने इसपर स्वत्व प्राप्त कर लिया था। इसके कुछ समय पश्चात् तमसाद्वीप-महा-अमरापुरा-पाइगु से महाधर्मराज द्वारा एक धर्म-प्रचारक मंडली भेजी गई थी, उस समय यह पूर्णतया हिंदुओं के अधिकार में पाया गया था[१]। "पाँच शताब्दियों से भी अधिक समय से हिंदू-संन्यासियों का इस स्थान पर स्वत्वाधिकार है[२]।"



१ Hamilton : 'Ruins of Buddha-Gaya,' १८२३, पृष्ठ १।

२ बुद्धगया मंदिर के १८९४ वाले मुकदमे में, बंगाल गवर्नमेंट के सरकारी कागजात, पृष्ठ ३२।

उपसंहार

बौद्ध-संप्रदाय हिंदुओं द्वारा बहिष्कृत एक हिंदू-संप्रदाय

बौद्ध-धर्म के हिंदू-धर्म में मूलतः निहित होने के प्रमाण :—

इस प्रकार बुद्ध का वास्तविक मत उस कट्टर हिंदू-संप्रदाय का एक अंग था, जो पुरातन वैदिक धर्म (सनातनधर्म) के आश्रित है; नहीं, वह इससे भी कहीं अधिक उससे संबंधित है। हिंदू-धर्मशास्त्र स्वयं कहते हैं :— "जो लोग वेदों के ज्ञाता हैं वे भली भाँति जानते हैं कि वेद-मूलक बुद्ध की तांत्रिक पूजा से युक्त धर्म अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ है[1]।"

---

१ सूतसंहिता : ४-२०-१६ [देखो टिप्पणी]। मिलाओ La Vallee Poussin : 'On the authority of Buddhist Agamas.' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १९०२, पृष्ठ ३७४ से)।

इस कथन से ज्ञात होगा कि आरंभ में बुद्ध का प्रतिमा-पूजन तांत्रिक था और तांत्रिक मंत्रों द्वारा ही उनकी पूजा होती थी। बुद्ध की यह उपासना हिंदुओं का एक विशेष संप्रदाय करता था[1]। वे लोग हिंदुओं के अन्य

---

१ मिलाओ Burney: 'Discovery of Buddhist images with Deva-nagari inscriptions at Tagoung, the ancient capital of the Burmese Empire' (एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८२६, भाग ५, पृष्ठ १५७ से)। विदेशों में अब भी जो बुद्ध की पूजा होती है, वह हिंदुओं की पूजा-विधि से बहुत मिलती-जुलती है। यह समता यात्रियों को आश्चर्य-चकित कर देती है। "(बौद्ध) मंदिरों की दीवालों पर (पेकिन में) संस्कृत के लेख खुदे हैं और पौराणिक कथाओं के चित्र खिंचे हुए हैं......। वहाँ के उत्सव की विधि हमारे हिंदू-उत्सवों की विधि से बहुत मिलती-जुलती है" —महाराजा जगज्जीतसिंह, कपूरथला का 'Travels in China, etc,' पृष्ठ २४-२५। जावा के बौद्ध-स्तूपों और मूर्तियों के विशुद्ध भारतीय ढंग के होने के संबंध में देखो क्राफर्ड के विचार। इसी आशय के विचार वैरो की चीनयात्रा में देखो। असंख्य बौद्ध-भग्नावशेषों को भ्रांतिवश पुरातत्त्ववेत्ताओं और तत्तत् देशवासियों ने ब्राह्मणकालीन मान लिया है। देखो Oriental Quarterly Magzine, संख्या १६, पृष्ठ २१८-२२२ (हॉगसन के निबंधों से उद्धृत, पृष्ठ ६७)।

संप्रदायों से उसी प्रकार मत-वैभिन्न्य रखते थे[1], जिस प्रकार हिंदू-धर्म में श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण की उपासनाओं के सांप्रदायिक विभाग हैं और इनमें विचार-वैभिन्न्य भी है पर इन दोनों में से कोई भी उपासना हिंदू-सनातनधर्म के क्षेत्र

---

१ मिलाओ Max Muller : 'Buddhism originally a Brahmanic sect' (Anthropological Religion, Gifford Lectures, पृष्ठ ३४)। बौद्ध-धर्म से जो मत-वैभिन्न्य पाया जाता है उससे उसका हिंदू-धर्म से बहिष्कार नहीं ज्ञात होता। यह वैभिन्न्य बहुत पीछे जाकर उत्पन्न हुआ, और हुआ इस धर्म के प्रवर्तक के विचार के विपरीत। (Rhys Davids : 'Buddhism,' १९१०, पृष्ठ ८४)।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि बौद्ध-धर्म के पिछले ग्रंथों में अगले ग्रंथों से कहीं अधिक सांप्रदायिक वैभिन्न्य पाया जाता है। इस बात के कितने ही प्रमाण मिले हैं कि कतिपय बौद्ध-शाखाओं में ईसाई भावनाएँ भी प्रविष्ट हो गई हैं (देखो 'Huc's Travels' में चांकापा (Tsong-ka-pa) का जीवन-चरित्र, भाग २, अध्याय २, विशेषतः पृष्ठ ५१)। एक प्रकार के ईसाई साधुओं—जो 'कभी पदप्रक्षालन के दोषी' नहीं होते—से मिलते-जुलते एक प्रकार के बौद्ध-साधुओं की भी एक शाखा है। वे लोग 'अपगत-पदप्रक्षण' (जिन्होंने कभी पैर नहीं धोया)

से वाह्य नहीं समझी जाती। इसका तांत्रिक रूप मंत्रों ('ॐ मणिपद्मे हुं' आदि) के प्रयोग से, यंत्रों (हिंदू तांत्रिक इसे कवच कहते हैं) के प्रभाव की स्वीकृति से और साथ-ही-साथ तारा देवी की पूजा द्वारा वर्तमानकाल तक प्रचलित है। उक्त तारा देवी हिंदू-तंत्रशास्त्रों की

कहलाते हैं [देखो टिप्पणी]। पर बुद्ध के जीवनकाल में ही उनके अनुयायियों में मत-वैभिन्न्य हो गया था। (देखो ऊपर, पृष्ठ ६१ की पाद-टिप्पणी २)। यही कारण था कि बुद्ध की मृत्यु के अनंतर बहुत ही शीघ्र बौद्ध भिक्षुओं की दो सभाएँ हुईं, एक राजगृह में और दूसरी वैशाली में। पहली ने धर्म-ग्रंथों को उसी रूप में रहने दिया, जिस रूप में वे बुद्ध द्वारा कहे गए थे और पिछली ने उन धर्म-ग्रंथों की प्रत्येक बात निकाल बाहर की। देखो कुल्लवग्ग (कुलवर्ग), पुस्तक ११ और १२। [मिलाओ Sandor Csoma Korosi : 'Different Systems of Buddhism : from Tibetan Authorities' (एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८३८, भाग ७)। मिलाओ David : 'The Buddhism of the Buddha and Modernist Buddhism' (Buddhist Review, १९११, भाग ३, पृष्ठ १८)।

(यहाँ एक बात यह लक्षित की जा सकती है कि वेदों में भी एक ही संहिता में विभिन्न ऋषियों की विभिन्न शाखाएँ हैं।)

प्रधान देवियों में से एक हैं[1]।

बुद्ध की कुछ प्रतिमाओं द्वारा यह बात निश्चयात्मक रूप से सिद्ध हो चुकी है कि हिंदू-धर्म ही बौद्ध-धर्म का मूल है। इन मूर्तियों में एक हाथ में वर

(१)—बाह्य प्रमाण

---

१ बौद्ध लोग भी हिंदुओं की ही भाँति एक प्रकार की शक्ति में विश्वास करते हैं और उन्हीं की भाँति उसकी उपासना भी स्त्री रूप में ही करते हैं। उक्त शक्ति की अधिष्ठातृ देवी का नाम है तारा, इन्हें हिंदू लोग काली भी कहते हैं :—बौद्धों और हिंदुओं की कुरुकुल्ला एक ही हैं। (देखो Jaske's Tibetan Dictionary, पृष्ठ २ ; और आगमवागीश का तंत्रसार, श्यामा पूजावाला अध्याय)। बहुत-से बौद्ध-मंदिरों में तारा देवी के भी चिह्न पाए जाते हैं। यह बात बुद्ध के उस गीत से बहुत-कुछ प्रकट होती है जिसमें वे देवी को परमित और अमित बुद्धिवाली कहकर पुकारते हैं 'भगवति प्रज्ञा पारमिताऽमिता' (देखो अष्ट-साहस्रिका की प्रस्तावना)। [देखो टिप्पणी]। कमल (पद्म वा उत्पल) का पुष्प धारण करने पर तारा देवी हिंदुओं द्वारा वर्णित इसी नाम की देवी से एकदम भिन्न नहीं रह जातीं। बोधिधर्म, असंग आदि, जिन्होंने चीन और अन्य प्रदेशों में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था, हिंदू ही थे ; क्योंकि उनकी समस्त मूर्तियों के ललाट पर तीन बेड़ी रेखाएँ पाई जाती हैं।

और दूसरे हाथ में अभय की मुद्रा है[1]। इस मुद्रा का तात्पर्य हिंदू-धर्म के रहस्यों से पूर्ण अभिज्ञ व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरा नहीं समझ सकता[2]। उसके लिए तो यह निरर्थक और बुद्धि सेपरे की बात है। बुद्ध के मंदिर अधिकांश में बुद्ध के

[मिलाओ तारातंत्र, जो बौद्धों का ही ग्रंथ है, और स्नग्धरा-स्तोत्र जिसमें तारा देवी की स्तुति है)। देखो Blonay's 'Buddhique Tara' और Waddell: 'Tara' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, १८९४, पृष्ठ ६३)। 'मणिपद्मे' मंत्र के संबंध में देखो Francke :—'The meaning of 'Om mani padme hum' Formula,' जरनल, एशियाटिक सोसाइटी, १९१५, पृष्ठ ३९७-४०४); देखो Monier Williams: 'Buddhism,' पृष्ठ २७३ (टिप्पणी) भी; Koeppen's note, 'Brahmanism and Hinduism,' पृष्ठ २३ : Knight's 'Cashmere and Thibet,' पृष्ठ २६९। कवच के संबंध में देखो Carte: 'Notice of amulets in use by Buddhists'; इसपर शोम की टिप्पणियाँ भी देखो (एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८४०, भाग ९, पृष्ठ ९०४ से)]

१ अग्निपुराण : ४९-८ [देखो टिप्पणी]।

२ वैदिक खिलसूक्त में कहा गया है कि यज्ञ में चर्मचक्षुओं से ही देवदर्शन हो सकते हैं। (देखो ऋग्वेद-संहिता, खिलसूक्त, २८-६) [देखो टिप्पणी]। कहा जाता है कि जब कोई देवता

सनातनी अनुयायियों के बनवाए हुए हैं। उनका समस्त व्यय सनातनी राजाओं ने दिया था। सभी विद्वानों का इस विषय में मतैक्य है कि बुद्धगया का विशाल मंदिर

स्वयं अग्नि में उपासक के समक्ष प्रकट होता है तो वह अपना एक हाथ इस प्रकार से उठाता है मानो उपासक से कहता हो कि 'डरो मत' और दूसरे हाथ के द्वारा वह वर देता हुआ जान पड़ता है। यह मुद्रा वास्तविक देवता को मायावी रूपों से भिन्न प्रमाणित करती है। हिंदू योगी मानते हैं कि इस मुद्रावाले देवता का ध्यान करने से वह देवता उसी आकृति को धारण करता है और उपासक को उससे वर और आशीर्वाद (अभय) की प्राप्ति होती है। बृहन्नारदीय पुराण (अध्याय २, श्लोक २९) में कहा गया है कि योगी अपने योग में बुद्ध को इसी मुद्रा में देखते हैं। [देखो टिप्पणी]। इसलिए बुद्ध की ये मूर्तियाँ हिंदुओं द्वारा निर्मित थीं। क्योंकि केवल हिंदू ही उक्त प्रकार के रहस्यात्मक सिद्धांत में विश्वास करते हैं। यही नहीं, वरन् बुद्ध की और प्रकार की मूर्तियाँ भी हिंदुओं के योग और तंत्रों में कही हुई ध्यान-विधि से मिलती हैं। वे मूर्तियाँ ध्यानी बुद्ध की विविध मुद्राओं का प्रदर्शन करती हैं। यथा पद्मासन मुद्रा (दोनों पैरों को एक-दूसरे के ऊपर रखकर बैठना); नासाग्रदृष्टि मुद्रा (नाक के अग्रभाग पर दृष्टि गड़ाना); प्राणायाम मुद्रा (साँस का रोकना)। इन सबसे यह सिद्ध होता

एक ब्राह्मण ने ३०० ई० के लगभग निर्माण कराया था।

है कि आरंभ में हिंदुओं ने अपने ढंग से बुद्ध की पूजा आरंभ की थी। जावा के बराबुदुर में बुद्ध की जो मूर्तियाँ पाई गई हैं उनमें भी यही वराभय मुद्रा है। यह बात फाउचर ने अपने 'Beginning of Buddhist Art,' पृष्ठ २५६ में लिखी है। (देखो Karl With: 'Java,' चित्र-फलक ९-१२ भी)।

बुद्ध-मूर्तियों में हाथों द्वारा जो मुद्राएँ दिखाई गई हैं वे मूलतः पूर्णतया हिंदू-ढंग की थीं। मिलाओ Burgess: 'Buddhist Mudras' (Indian Antiquary, १८९७, भाग २६, पृष्ठ २४)। मुद्राओं के चित्र के लिए देखो Hoffmann: 'Nippon Buddha Pantheon'। मिलाओ Frankfurter: 'The Attitudes of the Buddha.' (जरनल, श्याम सोसाइटी, बंकाक, १९१३, भाग १०, खंड २, पृष्ठ १-३५)। [मार्को पोलो का कथन है कि भारत के बाहर मूर्ति-पूजा के आरंभ और प्रचार का कारण है बौद्ध-धर्म। देखो पृष्ठ ३१७-३१९, यात्रा विवरणों का कार्डियरवाला संस्करण, भाग २ पुस्तक ३, अध्याय १५)। मिलाओ मूर्ति के लिए मुसलमानी शब्द 'बुत' और बौद्ध-मंदिरों के लिए 'बुतकादो'—पगोद—संभवतः ये शब्द बुद्ध के मुसलमानी नाम 'बुत' से बने हैं। (मिलाओ Prinsep's 'Useful Tables,' पृष्ठ २२९, भाग २, उनकी Autiquities में।

उसका नाम संभवतः अमरदेव था[1]। इसके अतिरिक्त यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि ब्राह्मण-नरेश बुद्ध की पूजा किया करते थे, क्योंकि प्राचीन भारत के यौधेय राजाओं की मुद्राओं में एक ओर सनातनी लेख मिलता है और दूसरी ओर चैत्य एवं बोधितरु[2]। ये मुद्राएँ भी लगभग ३०० ई० की हैं[3]। इससे यही ज्ञात होता है कि संभवतः अमरदेव ने अपने राजकीय सहायकों की उदारता के ही बल पर यह विशाल मंदिर निर्मित कराया था।

---

१ Furguson : 'History of Architecture,' भाग १, पृष्ठ ७७ ; Cunningham : 'Mahabodhi,' पृष्ठ २१ ; राजेंद्रलाल मित्र : 'Buddha-Gaya,' पृष्ठ-२४२।

अमरदेव नामक ब्राह्मण को कुछ लोग भ्रमवश अमरकोश-कार अमरसिंह मानते हैं जो बुद्ध के उपासक थे। पर थे ये जाति के क्षत्रिय (हिंदू)।

२ Cunningham : 'Coins of ancient India,' पृष्ठ ७५ से ७८ (और चित्र-फलक ६, आकृति ९)। शिलालेख में लिखा है—'भगवतो स्वामिनो ब्राह्मण यौधेयः' [देखो टिप्पणी]। चैत्य शब्द का अर्थ है बुद्ध के पूजन का स्थान (देखो ऊपर पृष्ठ १८]।

३ Cunningham : 'Coins of ancient India,' पृष्ठ ७६।

तुलनात्मक अन्वेषणों से प्राप्त इन वाह्य प्रमाणों के अतिरिक्त अभी और भी कितने ही प्रबलतर प्रमाण इस विषय में कहने शेष हैं। ये प्रमाण बौद्ध-धर्म का आलोचनात्मक अध्ययन करने से प्राप्त हुए हैं। बौद्ध-धर्म का साधारण अध्ययन भी करनेवाला कोई व्यक्ति यह बात भली भाँति जान लेगा कि यदि सारी बातों को लेकर और उन्हें परिपूर्ण परंपरा मानकर उनपर विचार किया जाय तो बहुत-से प्रमुख विषयों की बातें भी अधूरी अथवा दोषपूर्ण ज्ञात होंगी। बौद्ध-धर्म प्रधानतः सदाचार का आदेश करता है। इन आदेशों का जितना अधिक संबंध साधुओं से है, उतना गृहस्थों से नहीं। यह

(२)–आभ्यंतर प्रमाण

साधुओं का आचार-शास्त्र है, इसमें निम्नलिखित विषयों के नियम एकदम तटस्थभाव से निश्चित किए गए हैं—विवाह की पवित्रता, व्यक्ति का उत्तरदायित्व, समाज का कर्तव्य, प्रजा और राजा के पारस्परिक कर्तव्य, ईश्वर-संबंधी समस्या, स्वतंत्र इच्छा और अमरता के प्रश्न। ये ऐसी जिज्ञासाएँ हैं जिनकी अभिज्ञता किसी भी परिपूर्ण धार्मिक मत के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित है[1]। पर यह

---

१ यह बात डाक्टर बी. एम. बरुआ ने बौद्धाचार्य धर्मपाल

विवाद नहीं उठाया जा सकता कि बौद्ध-धर्म इन प्रश्नों से तटस्थ रहने की घोषणा करता है। क्योंकि कैंट ने कहा है—"ऐसे प्रश्नों से तटस्थ रहने की घोषणा करना व्यर्थ है, जिनके संबंध में मनुष्य का मन वस्तुतः कभी भी तटस्थ नहीं हो सकता[1]।" "उस समय सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं, जब ज्ञात होता है कि बौद्ध-धर्म वस्तुतः हिंदू-धर्म में एक क्रांति थी। बुद्ध ने उन बुराइयों के सुधार का गुरुतर कार्य-भार अपने सिर उठाया था, जो हिंदू-धर्म में या विशेषतः तत्कालीन साधु-धर्म और पुरोहितों के पाखंड में घुस पड़ी थीं,[2] उन्होंने धर्म के स्वरूप का

के धर्मराजिक विहार में दिए हुए अपने एक व्याख्यान में बतलाई थी। मिलाओ वाचस्पति मिश्र,—तात्पर्य-टीका, पृष्ठ २०० से [देखो टिप्पणी]।

१ जेम्स सेठ के 'Ethical Principles' में ईश्वर संबंधी समस्या, पृष्ठ ३९१ में उद्धृत।

२ उस समय के हिंदू-साधु दत्तात्रेय, सिकंदर के साथ आनेवाले ग्रीक आक्रमणकर्त्ताओं के जिम्नॉसॉफिस्ट (Gymnosophists) अर्थात् दिगंबर दार्शनिकों के अनुयायी थे। उन्हीं के संबंध में बुद्ध कहते हैं—"नंगे रहने से और जटा बढ़ाने से कोई मनुष्य पवित्र नहीं हो सकता, जब तक वह इच्छाओं को न जीत ले" (धम्मपद, १०-१३)। उनका ब्राह्मणवाद

एकांत परिवर्तन करने का विचार कभी नहीं किया था। अपने सुधार-प्रांत के बाहर भी बुद्ध ने हिंदू-धर्म की सारी बातें स्थिर रक्खीं। हिंदू-धर्म के संबंध में मौनावलंबन करने और उसकी आलोचना से विरत रहने से ही यह बात नहीं प्रमाणित होती, वरन् उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से हिंदू-धर्म-ग्रंथों के उदाहरण और अवतरण दिए हैं और उन्हें अपने लिए प्रामाण्य माना है[1]। इसलिए धर्म के मूल प्रश्नों को बुद्ध अस्वीकृत नहीं करते, वरन् जिस हिंदू-धर्म के माननेवाले वे स्वयं थे, उसी मूल धर्म के अनुसार उक्त बातों को स्थिर रखना उनका अभिप्रेत था। यह भी विख्यात है कि शिष्य बनाने में बुद्ध ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही महत्त्व देते थे[2]। बुद्ध विवाह के पवित्र स्वरूप के ही समर्थक थे

(या पुरोहितों के पाखंड) से विरोध धम्मपद के ब्राह्मण-वर्ग से प्रकट होता है। ब्राह्मण लोग उनका उपहास करने के लिए उन्हें 'भो गोतम' कहकर पुकारते थे, जिससे स्पष्ट रूप से उनके प्रति ब्राह्मणों का द्वेष-भाव प्रकट होता है।

१ देखो ऊपर, पृष्ठ २८ से।

२ देखो सुत्त निपात २-७। मिलाओ Coppleston: 'Buddhism,' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १४१; और Rhys Davids: 'Buddhism,' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ८४।

और विधवा-विवाह एवं अयुक्त विवाहों को गर्हित समझते थे। निस्संदेह ये सब बातें उनके द्वारा वास्तविक हिंदू-धर्म का प्रचार होना प्रमाणित करती हैं।।

बुद्ध और बौद्ध। हिंदू-धर्म से बौद्धों का बहिष्कार :—
(१)—बहिष्कार का वास्तविक कारण

काल-क्रम से बुद्ध के हिंदू-उपासक अपनी शाखा में विदेशियों को प्रविष्ट करने लगे। इसलिए कट्टर सनातनी-समुदाय से सांप्रदायिक झगड़ों का सूत्रपात हुआ। पहले तो पुरोहितों का विरोध[1] एवं सिद्धांत-संबंधी आक्षेप[2] ही होता था, पर अंत में राजकीय एवं राजसंमत बाधाएँ खड़ी होने लगीं[3]। इनके फल-स्वरूप बौद्ध-धर्म भ्रष्ट एवं धर्म-विरुद्ध माना जाने लगा। इस

---

१ जैसे भट्ट कुमारिल स्वामी के विरोध।

२ जैसे आचार्य शंकर स्वामी पर किए जानेवाले आक्षेप।

३ जैसे कर्ण-सुवर्ण के राजा शशांक के उपद्रव। [यह संदेहात्मक है कि कभी हिंदुओं ने बौद्धों का अभिद्रोह किया है अथवा नहीं। शंकर ने कभी भी बौद्धों से अभिद्रोह नहीं किया, क्योंकि मंडनमिश्र के प्रतिनिधित्व में कर्मकांडी ब्राह्मणों के संप्रदाय से ही उनका विशेष झगड़ा था।—देखो 'Buddhism in its Relationship with Hinduism,' बौद्धाचार्य धर्मपाल-कृत, पृष्ठ ११]।

विद्रोह का यहीं अंत नहीं हुआ, वरन् बौद्ध-धर्म भारतभूमि से एकदम निर्वासित हो गया, केवल यत्र-तत्र उसके कुछ चिह्न-मात्र अवशिष्ट रह गए[1]। यद्यपि बौद्ध-धर्म अपनी भ्रष्टावस्था को प्राप्त होकर हिंदुओं द्वारा बहिष्कृत हो गया तथापि बुद्ध उस सिंहासन से कभी भी च्युत नहीं किए गए, जो उन्होंने हिंदुओं, नहीं-नहीं, संसार के समस्त मनुष्यों के हृदय पर जमाया था। वह अब भी ज्यों-का-त्यों है[2]। श्रीशंकराचार्य[3] के—जिन्होंने बुद्ध के सच्चे अनुयायियों को सांप्रदायिक उपाधि त्यागकर पुनः पुरातन वैदिक धर्म

१ धर्म, धर्मराज, धर्मठाकुर, धर्म-वैजयंती आदि का पूजन हिंदुओं की कुछ निम्न श्रेणी की जातियों में अब भी पाया जाता है, जो परिभ्रष्ट बौद्ध-धर्म का सूचक है। [मिलाओ हरप्रसाद शास्त्री : 'Buddhism in Begnal since the Mohammadan conquest" (एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८९५, भाग ६४)। अप्रकट, गुप्त अथवा प्रच्छन्न-हिंदू-बौद्धों के लिए देखो नगेंद्रनाथ वसु,—'The Modern Buddhism and its Followers in Orissa.'। बौद्ध-धर्म की भारत में अवस्थिति और धर्म के पूजन के संबंध में देखो भारत की मनुष्य-गणना, १९०१, भाग १, खंड १, पृष्ठ २६९-२७१]।

२ मिलाओ Rhys Davids : 'Buddhism,' पृष्ठ ८५।

३ मिलाओ श्रीशंकराचार्यकृत दशावतार-स्तोत्रम् में उनका

में लौट आने के लिए प्रेरित किया था¹,—हृदय-सिंहासन पर भी बुद्ध विराजमान थे। तदनंतर नागार्जुन ने भारत

कथन :—"योगिराज बुद्ध हमारे चित्त में जागरित हों।" [देखो टिप्पणी]।

१ यह बहुत-कुछ निश्चित है कि शंकराचार्य ने बहुत-से श्रमणों को संन्यासी होने के लिए प्रेरित किया और विहारों को मठों के रूप में परिवर्तित कर डाला। इस प्रकार मूल बौद्ध-धर्म तो हिंदू-धर्म में समा गया और नाममात्र का बौद्ध-संप्रदाय भारत से एकदम लुप्त हो गया। मूल बौद्ध-धर्म की अनेक रीतियाँ हिंदू-वैष्णवों के विविध संप्रदायों में अब भी पाई जाती हैं। ये लोग विष्णु और अन्य अवतारों की पूजा के साथ-ही-साथ बुद्ध की भी पूजा करते हैं। "वैष्णव-धर्म में बौद्ध-धर्म का प्रभाव लक्षित होता है। बंगाल के वैष्णवों के अत्यंत प्रधान मंदिर भी ऐसे ब्राह्मणों के अधीन हैं, जो स्वयं कट्टर शाक्त हैं।" (भारत की मनुष्य-गणना, १९०१, भाग १, खंड १, पृष्ठ ३६१)। मिलाओ Stevenson: 'On the intermixture of Buddhism with Brahmanism in the Religion the Hindus of the Dekkan' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८४३, भाग ७)। बुद्ध-सहित दशों अवतारों का पूजन कूच-बिहार, नेपाल, कश्मीर आदि में प्रचलित है। 'नेपाल-माहात्म्य' भी कहता है कि बुद्ध की पूजा करना शिव की पूजा करना है।

में और पद्मपाणि ने विदेशों में नए ढंग से बौद्ध-धर्म को व्यवस्थित किया[1]। अब विदेशियों एवं बाहरी लोगों में ही बौद्ध-धर्म का प्राबल्य एवं प्रचलन होने से और उन्हीं लोगों में इसके क्रियात्मक रूप से सीमित रहने से यह

(२)—बहिष्कार के संभाव्य कारण

भ्रमवश मूलतः वेद-विरुद्ध माना जाता है। इसी आधार पर यह भ्रमपूर्ण कल्पना की जाती है कि वेदों के विरुद्ध आदेशोपदेश करने के कारण ही अपने मत के साथ-ही-साथ हिंदू-धर्म से बुद्ध का बहिष्कार हो गया था। यह

---

१ पद्मपाणि 'ॐ मणिपद्मे हुं' मंत्र का रचयिता है। इसे अवलोकितेश्वर (जिसका अर्थ है प्राचीन समय को देखनेवाला) भी कहते हैं। उस समय तक नागार्जुन का होना सब लोग स्वीकार नहीं करते। बौद्ध-धर्म की नवीन व्यवस्था घोर तांत्रिक है। इसी से आधुनिक बौद्ध-तंत्रों का उदय हुआ है। बड़े आश्चर्य की बात है कि इसे हिंदू भी मानते हैं। इन बौद्ध-तांत्रिकों की एक शाखा हिंदू-देव शिव को अवलोकित और उनकी सहवासिनी को तारा—'रक्षिका'—की भाँति मानती है। (देखो तारानाथ कृत 'History of Buddhism,' अध्याय १०, मिलाओ वैडेल का निबंध, रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९४, पृष्ठ ५१-८९)। [देखो टिप्पणी]।

सत्य है कि बुद्ध ने वेदों के विरुद्ध आदेशोपदेश किया था। किंतु उन्होंने वेदों के केवल उसी अंश का विरोध किया था जिसमें पशुवध का समर्थन किया गया है और जो कर्मकांड के आधिक्य और ऊपरी देखावे का हेतुभूत था[1]। अब पूर्वोक्त वेदांश को लीजिए। बुद्ध से पहले उसको स्वयं वेद के ही अन्य अंशों ने दूपित ठहराया है और भगवद्गीता ने भी उसकी निंदा की है[2] तथा बुद्ध के अनंतर स्वयं शंकराचार्य ने उसे दोपयुक्त वताया है[3]।

---

१ पद्मपुराण, क्रियाखंड : ६-१८८ ; भागवतपुराण : ११-४-२२ ; शंकर-विजय : १२-८ ; गीतगोविंद : अवतारों की स्तुति [देखो टिप्पणी]।

२ मुंडकोपनिषद् : १-२ (संपूर्ण अध्याय)। Gough : 'Philosophy of the Upanishadas,' पृष्ठ १०२, भगवद्गीता २-४२ से [देखो टिप्पणी]।

३ शंकर-विजय से प्रकट होता है कि श्रीमच्छंकराचार्य ने कर्मकांड के विरुद्ध संन्यास-धर्म का संदेश दिया था। उनका वास्तविक झगड़ा बौद्धों से नहीं था, जैसा बहुत-से लोग भ्रमवश समझते हैं ; वरन् वे मंडनमिश्र के प्रतिद्वंद्वी थे। मंडनमिश्र उस समय कर्मकांड के प्रधान आचार्य थे। उन्हें शंकराचार्य ने तर्क में पराजित किया और अपने मत में मिला लिया। बौद्ध तो केवल

अतएव यदि उक्त स्थल और व्यक्ति धर्म-विरोधी नहीं समझे जाते, तो केवल बुद्ध ही एक ऐसे दोष के भागी नहीं हो सकते जिसके दोषी उक्त सभी व्यक्ति हैं। बात यह है कि सनातनी हिंदू कभी भी वेदों की किसी बात का विरोध करने की धृष्टता को क्षमा नहीं कर सकते और यही कारण है कि हिंदू-ग्रंथों में हो ऐसे स्थल हैं जो शंकराचार्य तक के विरुद्ध हैं[1]। पद्मपुराण में निम्नलिखित बात लिखी है—"माया का सिद्धांत (अर्थात् शंकर का मायावाद) देखने में तो वेदों की व्याख्या जान पड़ता है, पर है यह वस्तुतः वेद-विरुद्ध। संसार के सर्वनाश के लिए ही इसकी स्थापना की गई है। माया का यह सिद्धांत असत् है। वस्तुतः यह प्रच्छन्न

साधु-धर्म के ही प्रचारक थे, इसीलिए शंकराचार्य को उन्हें अपने मत में परिवर्तित करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उनका विवाद बौद्धों की केवल एक ही शाखा के लोगों से था, जो उनसे आ भिड़े थे अथवा कहना यों चाहिए कि जो बुद्ध की मूल-शिक्षा का अशुद्ध रूप में प्रचार कर रहे थे।

१ देखो साहित्य-संहिता में बौद्ध-धर्म के संबंध में निकला हुआ जयचंद्र शर्मा का निबंध, १३०९ (बंगाली वर्ष), संख्या ९-१०।

बौद्ध-धर्म ही है। कलियुग में ईश्वर की नाशकारिणी शक्ति ने ब्राह्मण (अर्थात् शंकराचार्य) का रूप धारण करके इसका उपदेश किया है[1]।" यद्यपि इस प्रकार वेद के एक अंश की आलोचना करने का साहस करने के कारण शंकराचार्य की निंदा की गई है तथापि इस कार्य के लिए उन्हें हिंदू-धर्म से कभी भी बहिष्कृत नहीं किया गया। इसके विपरीत आज तक बराबर वे पुरातन वैदिक धर्माश्रित सनातनधर्म के सर्वश्रेष्ठ नेताओं में परिगणित हुए हैं। यों ही शंकराचार्य की भाँति वेदों के एक अंश के विरोध में अपनी आवाज ऊँची करने के कारण बुद्ध की भी निंदा की गई है पर इस बात के लिए वे हिंदू-धर्म से कभी भी बहिष्कृत नहीं किए गए।

हिंदुओं ने बुद्ध का बहिष्कार कभी नहीं किया :— बौद्धों का बहिष्कार किया

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बुद्ध के अनुयायियों का बहिष्कार बौद्ध-धर्म में आ जानेवाले कुछ और ही कारणों से हुआ था, और वह भी बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति के बहुत समय पश्चात्। इसलिए ऐसा कहना कहीं अधिक समीचीन होगा कि

---

१ पद्मपुराण (विजय भिक्षु द्वारा सांख्य-दर्शन की टीका में उद्धृत)। [देखो टिप्पणी]।

बुद्ध का नहीं, वरन् बौद्धों का हिंदुओं ने बहिष्कार किया, जो बुद्ध के पीछे उस अवस्था को प्राप्त हुए थे[१]। इस विषय में और ऊपर कही गई अन्य सभी बातों में विद्वानों का भी मतैक्य है। आगे इसका स्पष्टीकरण किया जाता है।

विद्वानों के मतों का उद्धरण :— —डा. स्मिथ

" आदिम बौद्ध-धर्म के स्वरूप का ज्ञान पश्चात्कालीन साहित्य के आधार पर किए जानेवाले अनुमान से होता है। बुद्ध प्राचीन धर्म का विरोध करने के लिए कटिबद्ध नहीं हुए थे। उनके सिद्धांत ब्राह्मण-संप्रदाय के कतिपय

---

१ दशवीं शताब्दी के एक शिलालेख में यह स्पष्ट लिखा है कि बुद्धगया में बुद्ध-पद का चिह्न इस अभिप्राय से बनाया गया है, जिससे उसपर श्राद्ध-कर्म किया जाय। (देखो चार्ल्स विल्किंस का उक्त शिलालेख का अनुवाद,—Asiatic Researches, भाग १, पृष्ठ २८४)। इस शिलालेख का निर्माण-काल चाहे जो हो पर इससे स्पष्ट सिद्ध है कि हिंदुओं ने वैदिक धर्म से बुद्ध का कभी बहिष्कार नहीं किया, और अंततोगत्वा यह भी प्रमाणित होता है है कि बुद्ध स्वयं वैदिक धर्म के कट्टर अनुयायी थे। " यदि जनता में शुद्ध वेदवाद ही होता तो बुद्ध की किंचिन्मात्र आवश्यकता न होती। "—Sewell : 'Early Buddhist Symbolism' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८८६, पृष्ठ २६५)।

सिद्धांतों के विकसित रूप[1] थे। उनका मुख्य विषय था दुःख से मुक्ति। भारत से इस धर्म का लोप ब्राह्मणों के द्रोह से नहीं, अपितु आंतरिक कारणों से हुआ। जैसे—अनुशासन का शैथिल्य, साधु-धर्म का बाहुल्य आदि[2]।"

---

१ मिलाओ "इसके मत और व्यवहार दोनों पर इसके उद्गम के चिह्नों की छाप पड़ी हुई है। तर्कपूर्ण पद्धति से इस मत का विकास ब्राह्मण-धर्म से दिखाया जा सकता है"—Scenes in India (or Oriental Annual), १८३५, पृष्ठ २३६।

२ Smith :—Cyclopaedia of Names (निबंध 'बुद्ध')। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदुओं द्वारा बौद्धों का विरोध किया गया था, विशेषतः राजा शशांक के शासनकाल में। [मिलाओ Rhys Davids : 'Persecution of Buddhists in India' (पाली टेक्स्ट सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९६) मिलाओ एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, बंगाल, १८५४, पृष्ठ ४७२ और Sherring का 'Benares,' पृष्ठ २६८-२७० भी]। परंतु केवल द्रोह कभी भी किसी धर्म के लोप का कारण नहीं हो सकता। बौद्धों को हिंदुओं द्वारा उतनी अधिक बाधा नहीं पहुँची जितनी अधिक बाधा हिंदुओं को बहुत दिनों तक मुसल्मानों द्वारा निरंतर पहुँचती रही है। तो भी हिंदुओं का धर्म अब तक अखंड रूप से प्रचलित है। भारत में बौद्ध-धर्म के ह्रास एवं अवनति का कारण द्रोह के अतिरिक्त कुछ और है। क्योंकि द्रोह बहुधा किसी

"नास्तिकवाद निश्चित रूप से सभी बौद्धों की शिक्षा नहीं है, क्योंकि उनकी एक शाखा एक स्वतंत्र-सत्ताधारी देवता को मानती है और उन्हें आदि-बुद्ध के नाम से पुकारती है[1]। वे आत्मा के अस्तित्व को पूर्णतया अस्वीकृत भी नहीं करते। जब वे लोग भविष्य में कर्मफल की प्राप्ति की घोषणा करते हैं, तो उन्हें आत्मा के अस्तित्व की निश्चित अस्वीकृति का दोषी ठहराना असंभव है[2]। वे कहते हैं

—रेवरेंड डा. के. एम. बनर्जी

मत का नाश करने की अपेक्षा उसको परिपुष्ट ही करता है, जैसा ईसाई धर्म के इतिहास से प्रकट है। उस समय जो बाधा डाली गई थी, विशेषतः मुसलमानों द्वारा, उसका तात्पर्य बुद्धगया के मंदिर तथा अन्य स्थानों की तीर्थयात्रा के लिए भारत आनेवाले विदेशी बौद्धों का यातायात रोकना था। (महाबोधि सोसाइटी का जरनल, भाग २९, सं० ९ में मंदिर का इतिहास :—अनागरिक एच. धर्मपाल)।

१ मिलाओ Wright: 'History of Nepal' (Buddhist Recension), अध्याय १। [मिलाओ बौद्धों की एक शाखा का नाम सर्वास्तिवादिन् (सबमें विश्वास करनेवाले) (पाली टेक्स्ट सोसाइटी जरनल, १९०४-१९०५ पृष्ठ ६७, लंदन)]।

२ चेतना और इच्छा की अंतिम एकरूपता अनंत शांति

कि संशयात्मा नरक भोगेगा अथवा पशु-योनि में जन्म लेगा। ज्ञानवान् देवलोक में उत्पन्न होगा अथवा मनुष्य के शरीर में जन्म लेगा[1]। उनकी वेद-निंदा के संबंध में यह कहना कहीं अधिक समीचीन होगा कि वे वेदों की निंदा करने की अपेक्षा उनकी बातों को अस्वीकार करते हैं[2]।"

"बौद्धों के धर्म-ग्रंथों द्वारा बुद्ध का जो स्वरूप हम लोगों के समक्ष आता है वह सामान्यतः न तो ब्राह्मणों का विद्वेष ही प्रकट करता है और न उसमें ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध वाद-विवाद

—मैक्समूलर

अथवा निर्वाण की अवस्था है। बौद्ध लोग इसे ही अमर-पद मानते हैं। Bigelow : 'Buddhism and Immortality' (Ingersoll Lecture, १९०८) ; मिलाओ Paul Carus : 'Karma and Nirvan. Are the Buddhist doctrines nihilistic ?' (Monist, भाग ४, १८९३-९४, पृष्ठ ४१७-४३९, शिकागो)। मिलाओ सेन : 'Buddhism and Vedantism,—a Parallel' (विहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी का जरनल, १९१८, भाग ४, पृष्ठ १४१ से)।

१ मिलाओ छांदोग्योपनिषद्, ५-१०-७ [देखो टिप्पणी]।

२ रेवरेंड डा. के. एम. बनर्जी एल-एल. डी.,—'Dialogues on Hindu Philosophy,' Dialogue, 5।

करने की रुचि ही बतलाता है। यद्यपि बौद्ध-धर्म ब्राह्मण-धर्म के प्रतिवर्तन के रूप में उठा था, पर इन दोनों के बीच अटूट शृंखला है। बुद्ध वैदिक देवताओं के विरुद्ध वाद नहीं करते। इन्होंने उन्हें उसी प्रकार विनीत भाव से मान्य समझा है जिस प्रकार उपनिषदों के प्रणेता उन्हें समझते थे[१]।"

"इसलिए बौद्ध-धर्म में हिंदू-धर्म अंतर्निहित था। गौतम के आविर्भाव का मुख्य उद्देश पुरातन धर्म का मूलोच्छेद नहीं, बुराइयों का संस्कार करके उक्त धर्म का पुनः स्थापन था[२]।"

—मॉनियर विलियम्स

---

१ Max Muller : 'Collected Lectures,' व्याख्यान २, पृष्ठ ९४-९५। अपने पहले के ग्रंथों में ये विद्वान् इस निश्चय पर नहीं पहुँचे थे। [देखो टिप्पणी]।

२ Sir Monier Williams : 'Buddhim,' पृष्ठ २०६। त्विश्य जातक में लिखा है कि गृहस्थों का वास्तविक धर्म है धार्मिक कृत्यों के साथ वेदाध्ययन करना। (देखो शरच्चंद्रदास 'Indian Pandits in the Lands of Snow,' (पृष्ठ ८७)। वृहद्धर्मपुराण आदि कतिपय बौद्ध-ग्रंथों में यह लिखा है कि जब बौद्ध लोग वेदों का संमान करना बंद कर देंगे, तब उनका अपकर्ष होने लगेगा। यह कथन बतलाता है कि वेदों का संमान करना बौद्धों का कर्तव्य है।

" बुद्ध के विषय में यह कहना अनुचित होगा कि उन्होंने किसी नए धर्म के स्थापन का विचार किया था। वे ईश्वर और आत्मा की प्रकृति, संसार की अनित्यता आदि विषयों से संबंध रखनेवाले प्रश्नों पर वाद करने के अभिलाषी नहीं थे, क्योंकि वे ऐसे वाद-विवाद से कोई लाभ नहीं समझते थे। प्रत्यक्ष रूप से परमात्मा (ब्रह्म) की सत्ता को अस्वीकार न करते हुए भी उन्होंने उसे नहीं माना[1] ।"

—विंसेंट स्मिथ

" बुद्ध मुक्ति-मार्ग का अन्वेषण कर रहे थे। उन्होंने यह मुक्ति आत्म-संस्कृति और आत्मानुशासन में पाई। उन्होंने पाप एवं क्लेश के मूल का अनुसंधान करने की अपेक्षा अपने को आध्यात्मिक विचारों में बहुत कम प्रवृत्त किया। उनकी अभिलाषा थी

—डा० गॉथेल

---

१ Vincent A. Smith :—' The Oxford History of India, ' पृष्ठ ५४-५५। मिलाओ ' बुद्ध ने कहीं भी अपरिमित शक्ति को अस्वीकार नहीं किया (' प्रज्ञा पारमिता-अमिता'—अष्टसाहस्रिका के आरंभिक श्लोकों में) :—Waddell : ' Buddha's Secret ' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९४ पृष्ठ ३८४)।

कि मनुष्य ऐसी माया एवं अभिलाषाओं को दबाकर ऊपर उठे जो पाप एवं क्लेश की जननी हैं।

"बुद्ध और उनके सिद्धांत बराबर पराजित होते रहे। यह सत्य है कि नैतिक आचार, धार्मिक सिद्धांत और दार्शनिक विचार में से कोई भी बहुत दिनों तक उसी रूप में नहीं स्थिर रह सकता, जिस रूप में वह आरंभ में रहता है। बाहरी बातें आंतरिक परिवर्तनों के साथ-ही-साथ इतनी भर जाती हैं कि उसका पिछला रूप पहले से बहुत भिन्न हो जाता है। इसी नियम के अनुसार बौद्ध-धर्म में ऐसा परिवर्तन जितनी पूर्णता को प्राप्त हुआ उतना अन्यत्र नहीं। बुद्ध ने धर्म के उच्चभावात्मक पक्ष के संबंध में गंभीर मौन का अवलंब लिया था। उन्होंने इस बात की अस्वीकृति पर बहुत जोर दिया था, और कहा था कि हमारी शिक्षा का इससे कोई संबंध नहीं है तथा इसे हमारी आचार-नीति का आधार मानना भी अनावश्यक है[1]। तथापि मानव-प्रकृति ने सदाचार की लालसा से ठगा जाना अस्वीकार कर दिया। एशिया में सदा से इस बात का अनुभव किया

---

[1] इस मौनावलंबन की ठीक-ठीक व्याख्या के लिए देखो ऊपर, पृष्ठ ७८।

जाता है कि यदि कोई व्यक्ति सदाचारपूर्ण जीवन वहन करने का उपदेश देता है तो उसका उपदेश अरण्यरोदन ही होता है, जब तक उसका कथन किसी महात्मा (अथवा देव-कोटि के प्रामाण्य व्यक्ति के) द्वारा पुष्ट न हो। इसके अतिरिक्त मानव-जाति की आकांक्षाएँ भी सांसारिक व्यवहारों से हटाकर उस कोटि में नहीं पहुँचाई जा सकतीं जिस कोटि में बुद्ध उन्हें पहुँचाना चाहते थे। उनके अनुयायियों के लिए इससे उत्तम और सुगम मार्ग और क्या हो सकता था कि वे स्वयं बुद्ध को देवत्व की कोटि में पहुँचाकर अपनी उत्कंठाओं की परितुष्टि करें ? शनैः शनैः यह विश्वास जम गया और बौद्ध-धर्म आचार-शास्त्र के नियमों से धार्मिक संघटन में परिवर्तित हो गया[1]।"

—र्‌होस डेविड्स

"लोगों में यह भ्रमपूर्ण भावना फैल गई है कि गौतम हिंदू-धर्म के शत्रु थे। पर बात ऐसी नहीं है। गौतम एक आदर्श भारतीय के रूप में उत्पन्न हुए, पाले-पोसे गए, जीवन-यापन

---

१ डा. रिचर्ड गॉथेल पी-एच. डी. (न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी के अध्यक्ष), उक्त लाइब्रेरी का बुलेटिन, १९१६, भाग २०, पृष्ठ ११४।

किया और परलोकगामी हुए। उस समय के प्रचलित धर्म से उनका विवाद बहुत थोड़ा था। उनका अभिप्राय इसे सँवारना एवं परिपुष्ट करना था, नष्ट करना नहीं। संभवतः (उनमें और अन्य उपदेशकों में) जो विभिन्नताएँ इस समय इतनी स्पष्ट जान पड़ती हैं, वे उस समय वैसी नहीं थीं। इसी कारण वे उस समय के ब्राह्मणों की समवेदना और समर्थन से वंचित नहीं थे। उनके प्रधान शिष्यों और धर्मानुयायियों में से बहुत-से ब्राह्मण ही थे। उस काल में न तो गौतम ने और न ब्राह्मणों के एक विशाल समुदाय ने ही इन दोनों मतों को असंगत समझा था। अशोक के समय तक, जब कि बौद्ध-धर्म भ्रष्ट हो गया था, हमें किसी प्रकार की धर्म-बाधा नहीं सुन पड़ती। बौद्ध-धर्म बराबर विकसित होता रहा और सनातनधर्म के साथ-साथ उसकी भी उन्नति होती रही। इस प्रकार यह बतलाने से कि उस समय हिंदू-धर्म कैसा मलिन और कष्टदायी हो गया था, बात ठीक इसके विपरीत दिखलाई देती है। गौतम की समस्त शिक्षा अवश्य कर्मकांड की पद्धति से बाहर थी। बुद्ध के उपदेशकों ने बलि करने का निषेध किया है। बुद्ध उन सुधारकों की श्रेणी में सबसे बुद्धिमान् और उत्तम थे जिन्होंने भारत के धार्मिक जीवन

में नवीन शक्ति का संचार करने का घोर प्रयत्न किया है[1]।"

"बौद्ध-धर्म विभिन्न देशों में तो विपरीत मतों के बीच विकसित होता रहा पर भारत में अपने जीवन के आरंभिक दश वर्षों में ही इसने अपनी काया बहुत बदल डाली। बौद्ध प्रायः अपने सभी विचारों, यहाँ तक कि नामों के चुनाव में भी ब्राह्मणों के ऋणी हैं, जैसे—धर्म, निर्वाण आदि। डा. वेबर ने बतलाया है कि बुद्ध (या प्रतिबुद्ध) शब्द पूर्ण आत्मज्ञानी के लिए सर्वप्रथम वैदिक साहित्य के शतपथ-ब्राह्मण में प्रयुक्त हुआ है (१४-७-२-१७)[2]। ब्राह्मण-भावनाओं का अवलंब गौतम की शिक्षा में स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ता है। उन्होंने प्राचीन भावों को नवीन वेश-भूषा में प्रस्तुत किया था, जो उनके अनुयायियों के लिए बहुत ही आकर्षक प्रमाणित हुई। उपनिषदों के बहुत-से उपदेशों के साथ उनकी अत्यधिक सहानुभूति थी। बौद्ध-धर्म अपने आदिम रूप में धर्म न होकर केवल

—एलिजावेथ ए. रोट

---

१ र्‌हीस डैविड्स का 'Buddhism (Non-Christian Systems),' पृष्ठ ८३-८५।

२ मिलाओ बृहदारण्यकोपनिषद् : ४-४-१२ [देखो टिप्पणी]।

एक दार्शनिक संप्रदाय था। बौद्ध-धर्म के सिद्धांतों की जड़ भारत-भूमि और हिंदुओं के पुरातन धर्म से लगी हुई है। बौद्ध-धर्म के प्रमुख सिद्धांत गौतम के बहुत पहले से भारत में पाए जाते हैं। उन्होंने कतिपय विद्वानों के विचारों को ग्रहण किया और बहुत-से लोगों में उन्हें फैला दिया। यद्यपि वे सामाजिक संगठन के रूप में वर्ण-विभेद को तोड़ना नहीं चाहते थे तथापि उन्होंने पुरोहितों की स्वार्थपरता को नहीं माना और सभी जातियों को उपदेश दिया। इस प्रकार ब्राह्मण-धर्म के बहुत-से विचारों का ग्रहण करते हुए भी बौद्ध-धर्म उक्त धर्म के विरुद्ध एक प्रतिवर्तन था[१]।"

यह पहले कहा जा चुका है कि बुद्ध अपने प्रतिद्वंद्वियों के झगड़े में नहीं पड़े और उन्होंने नास्तिकों को उन्हीं के विचारों में संलग्न किया, क्योंकि उन्हें आस्तिकता की ओर झुकाने का यही एक उत्तम मार्ग था[२]। किंतु ऐसा

१ एलिज़ावेथ ए. रीड :—'Primitive Buddhism,' पृष्ठ २५, १८२ से, १९८ से, २०४।

२ इस विषय की स्पष्ट व्याख्या के लिए देखो ऊपर, पृष्ठ ५८ से। बौद्धों की एक शाखा के लोग सौत्रांतिक कहलाते हैं। ये लोग भी मानते हैं कि जिस समय बुद्ध शून्यता का उपदेश कर रहे थे उस समय उन्होंने चातुर्य की नीति (उपाय-कौशल्य)

करते हुए भी बुद्ध ने परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया ; वरन् केवल यही बतलाया है कि वह एक अज्ञात पदार्थ है[1] । इसलिए कहा जाता

—गफ

है :—" बौद्ध-धर्म उपनिषदों का ब्राह्मण-व्यतिरिक्त दर्शनवाद है[2] ।" इसके अतिरिक्त उनके कथनानुसार दुःख से बचना ही जीवन की समस्या[3] है ।

का अवलंब लिया था :—देखो La Vallee Poussin : 'On the authority of Buddhist Agamas' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १९०२, पृष्ठ २७४, पाद-टिप्पणी) ।

१ बुद्ध के अनीश्वरवाद के नमूने के लिए देखो तेविग्ग (त्रिविज्ञ) सुत्त (र्हीस डेविड्स द्वारा अनुवादित बौद्ध-सुत्तों में) । [मिलाओ 'Buddhism, an agnostic religion' ('Buddhism,' रंगून, १८०५, भाग २, पृष्ठ ७९)] ।

२ Gough : 'Philosophy of the Upanishadas,' पृष्ठ १८७ ।

३ " बुद्ध ने जीवन की समस्या को सुलझाने में अपने को लगाया था । वे उस निरंतर जन्म से छूटने का मार्ग ढूँढ़ रहे थे, जो प्रत्यक्ष ही दुःख से आच्छादित है ।"—Waddell : 'Buddha's Secret' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९४, पृष्ठ ३७२) ।

उन्होंने इसके समस्त उपकरण आचार-शास्त्र में पाए। इसे उन्होंने अतृष्णावाद[1] के सिद्धांत पर स्थापित किया। उन्होंने ईश्वर का प्रश्न उठाया ही नहीं। हिंदुओं के योगवासिष्ठ महारामायण में भी ठीक यही प्रकार ग्रहण किया गया है। यह ग्रंथ वसिष्ट-नामक वैदिक ऋषि के उपदेशों का संग्रह है। ये उपदेश वसिष्ट ने अपने राजवंशी शिष्य राम को समझने के लिए दिए थे। अवतारों की परंपरा में राम बुद्ध से तीन पीढ़ी प्रथम हुए थे। इस विषय में एक लेखक का कथन है :—"योगवासिष्ठ और बुद्ध के उपदेशों में इतना गहरा साम्य है कि बौद्ध तक राम और बुद्ध को एक समझ बैठते हैं[2] तथा योगवासिष्ठ को अपना सर्वोत्तम ग्रंथ मानते हैं[3]।"

—विहारीलाल मित्र

---

१ बौद्ध-धर्म में अभिलाषा का नाम है तन्हा (तृष्णा, प्यास)।

२ मिलाओ Fausboll: "The Dasharath Jatak, or The Buddhist story of King Rama". (Kopenhagen, 1871)।

३ योगवासिष्ठ का अँगरेजी में अनुवाद करनेवाले विहारीलालमित्र की 'मित्र-रहस्य' नामक पुस्तक (देखो इन्हीं का

अब समुचित और नैसर्गिक रीति से इस विषय की समाप्ति करनी चाहिए। बुद्ध ने यह घोषणा की थी कि हमने निर्वाण का पथ पा लिया है। उन्होंने इस संबंध में जनता को यह उपदेश दिया था कि इस पथ पर अपनी-अपनी ही ज्योति लेकर अग्रसर होना चाहिए[1]। अपने परलोक-गमन के समय उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद

उपसंहार :— बौद्ध-धर्म में इच्छा·

'Secrets of the Law,' अध्याय १, § २, पृष्ठ ७)। (योगवासिष्ठ के रचयिता वे ही कहे जाते हैं जो रामायण के हैं अर्थात् वाल्मीकि)।

१ महापरिनिर्वाण सूत्र, अध्याय २, § ३३। निस्संदेह इसके लिए इच्छा-शक्ति के अभ्यास की आवश्यकता है और यह अभ्यास स्तुति और उपासना के नियमित कर्मों से होता है। बौद्ध-धर्म में 'इच्छा का अभाव' शब्द अयुक्त जान पड़ता है, यह 'तृष्णा या वासना का अभाव' होता तो ठीक था। तृष्णा का अभाव, इच्छा का अभाव नहीं है, वरन् यही इच्छा-शक्ति का सबसे बड़ा कार्य है। यह ऐसा मोक्षदायक कर्म अथवा ऐसा अंतिम कार्य है जिसके पश्चात् प्रतिवर्तन नहीं होता। यह आत्मा को शरीर और बुद्धि के बंधनों से छुड़ा देता है (मुक्ति, निर्वाण)। [देखो टिप्पणी]। " बुद्ध की अध्यात्म-विद्या 'इच्छा' पर आश्रित जान पड़ती है।

से कहा था कि निर्वाण का सच्चा पथ मंत्र और बलि द्वारा तथागत की पूजा करने से नहीं मिलता, वरन् यह जीवन के छोटे-बड़े सभी कर्तव्यों को भक्तिपूर्वक करने से प्राप्त होता है। केवल तथागत की पूजा करना ही उनका यथोचित संमान नहीं है, वरन् जो बात उन्हें बहुत प्रिय है उसे मानना भी उन्हीं की पूजा है और यह पूजा उनकी इच्छा के अनुकूल होने से उन्हें अधिक ग्राह्य होगी[१]। बौद्ध-धर्म हमें पुनः एक बार पुरातन वैदिक धर्म और उसके द्वारा निर्धारित कर्तव्यों के साम्राज्य में ले जाता है। (देखो ऊपर, प्रस्तावना)। क्योंकि मानव-जीवन के समस्त कर्तव्यों

शापेनहावर जो बौद्ध-धर्म से अपने सिद्धांत का संबंध बतलाता है, वह ठीक ही है" [देखो Waddell : 'Buddha's Secret from a sixth century commentary.' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९८, पृष्ठ ३८२)। मिलाओ Mrs. Rhys Davids : 'On the Will in Buddhism,' (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, लंदन, १८९८ पृष्ठ ४७); मिलाओ Mrs. Rhys Davids : 'On the Culture of the Will in Buddhism' भी (Transactions of the International Congress of Orientalists; Paris, 1899,—Section I, p. 143 ff.)]।

[१] महापरिनिर्वाण सूत्र, अध्याय ५, § ६ [देखो टिप्पणी]।

में विकास के श्रेष्ठतर रंगमंच पर पदार्पण करना ही उत्तम कर्तव्य है। यह कर्तव्य अत्यंत प्राचीन, मौलिक और विश्वव्यापी है। इसके साथ ही मानव-जाति को इस कर्तव्य में नियुक्त करना भी बहुत आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा मानव का परम कल्याण हो सकता है और अन्य समस्त कर्तव्य भी इसी के अंतर्गत आ जाते हैं[1]।

इस प्रकार यह प्रमाणित हुआ कि बौद्ध-धर्म हिंदू-धर्म के अंग के रूप में पुरातन वैदिक धर्म से आविर्भूत हुआ और पुनः उसी में अंतर्भूत हो गया[2]।

---

१ कृष्ण यजुर्वेद १-५-१०-२ ; तैत्तिरीय ब्राह्मण २-४-२-२। मिलाओ महाभारत : राजधर्म, ८-३७ ; ६०-५२। मिलाओ श्रीशंकराचार्य का अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश— " सदैव वेदों का अध्ययन करो और सावधानी से उनके द्वारा निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करो "—(साधन-पंचक में)। इस विषय का पूर्ण विवेचन एक अन्य ग्रंथ में किया गया है जिसका नाम है ' The First Book of the Upanishadas ' [देखो टिप्पणी]।

२ विहार एंड ओरिस्सा रिसर्च सोसाइटी का जरनल, भाग ४, पृष्ठ १४३।

बुद्धगया में लिखित और ग्यारहवीं नवंबर, १६२२ को भगवान् के चरणों पर अर्पित।

योगिराज-शिष्य मैत्रेय।

परिशिष्ट

[निम्नलिखित बातों की समीचीनता द्वितीय खंड में टिप्पणियों के अंत में दिए हुए अनुलेख के पढ़ लेने के पश्चात् ज्ञात होगी ।]

बौद्ध-धर्म में अहिंसा अथवा अघृणा का सिद्धांत[1]

'हिंसा' शब्द का अर्थ है जीवित प्राणी का वध। वध के लिए आवश्यक है कि वधकर्ता के हृदय में वध्य के प्रति अनुकंपाहीन भावना हो। इसे अनिषेधात्मक शब्दों में घृणा कहते हैं। अतः 'हिंसा' का अर्थ है वह संकुचित विचार जो अधम मनुष्यों के हृदय में ऐसे समस्त जीवों के वध के लिए स्वभावतः होता है, जिन्हें वे पसंद

अहिंसा :—इसका वास्तविक अर्थ

---

1 इसका संबंध ऊपर पृष्ठ १९, २०, २१ से (और उक्त पृष्ठों की पाद-टिप्पणियों से) है।

नहीं करते[1]। इसलिए 'अहिंसा' शब्द का अर्थ ठीक इसके विपरीत अघृणा—घृणा का अभाव—है। अनिषेधात्मक शब्दों में इसका अर्थ हुआ अनुकंपा अथवा प्रेम। (Schopenhouer: 'Ueber das Fundament der Moral,' § १८)[2]।

कुछ लोगों ने तो यहाँ तक माना है कि अहिंसा ही परमोत्तम धर्म है (अहिंसा परमो धर्मः),[3] क्योंकि यह उस प्रीति को बढ़ाती है, जो व्यक्तियों की आत्माओं को परस्पर मिलाने की एक शक्ति है और जिसमें ऐसी सामर्थ्य है कि वह गए स्वर्ग को भी पुनः प्राप्त करा देती है। इतर लोगों ने माना है कि घृणा का औचित्य सदाचार[4]

---

१ देखो James: 'Principles of Psycology,' भाग १, पृष्ठ ३१२।

२ मिलाओ Weber: 'History of Philosophy,' पृष्ठ ५५३।

३ महाभारत: १-११-१३।

४ सदाचार द्वारा असत्य की ओर से घृणा होती है। बुराई के विरुद्ध निरंतर होनेवाले भलाई के युद्ध में घृणा सदैव स्थानापन्न रहेगी। प्राचीन लोकोक्तियों में कैसा विचारपूर्ण भाव देखा जाता है—" दुष्टों की रक्षा करना गुणियों का संहार करना

की प्रेरणा में रहता है। यह व्यक्ति को पृथ्वी पर अपना जीवन वहन करने की क्षमता प्रदान करती है। दर्शन के अनुसार सदाचार का सिद्धांत नैतिक बंधन का आधारभूत है। पर धर्म प्रेम के सिद्धांत को मनोहर स्वाधीनता के साम्राज्य का आधार समझता है। यह दर्शन और धर्म का, न्याय और क्षमा का एवं उपयोगिता और सुंदरता का झगड़ा है। इसी में जीवन की समस्त प्रतिद्वंद्विताओं और भीषण कारुणिक घटनाओं की जड़ पाई जाती है। बहुधा न्याय और क्षमा का झगड़ा इतना स्पष्ट हो जाता है कि कोई-कोई उदारता को नैतिकता का अभाव मानते हैं[1]। जो कुछ हो, पर यह तो सब प्रकार से मानना ही

है"; "जो शांति-प्रेमी है उसे युद्ध के निमित्त सन्नद्ध होने दो"। कवि इसी बात को यों कहता है—

"शांतिमय स्वप्नों के होते हुए भी तुझे अन्याय-युद्ध लड़ना आवश्यक है। वहाँ तुझे यह सर्वोत्तम शिक्षा मिलेगी कि सब कुछ जानते हुए भी मेरा ज्ञान नगण्य है।"

—(बर्टन द्वारा अनुवादित अब्दुलमजीद के कसीदे का उल्था)।

१ यथा—हक्सले के 'Prolegomena to Evolution and Ethics,' पृष्ठ २२ में। मिलाओ महाभारत, राजधर्म : १५-४९। [देखो टिप्पणी]।

पड़ेगा कि प्रेम में आकर्षिणी शक्ति है और यह संसार-निर्माण के कारणभूत एक परमात्मा में—बहुत-से के लय होने के लिए प्रधान सूत्र है। इसके अतिरिक्त यह एक साधारण अनुभव की बात है कि घृणा घृणा करने-वाले के मन और शरीर दोनों का स्वाभाविक विकास रोक देती है; किंतु प्रेम प्रेमी में स्वाभाविक सौंदर्य के साथ मन और शरीर दोनों का विकास करता है। घृणा सच-मुच प्रज्वलित अग्नि के समान है, जो संनिकट आनेवाले व्यक्तियों को केवल उत्तेजित ही नहीं कर देती, वरन् जिस हृदय में उभड़ती है उसे जला ही डालती है[१]। इसके विपरीत प्रीति शीतल चंद्र-ज्योत्स्ना के सदृश है, जो प्रकाशमान् तो कर देती है पर उत्तप्त नहीं करती—"यह एक ज्योतिष्पिंड है जो चारों ओर फैले हुए तमस्कांड को दूर कर पदार्थ को पूर्णरूपेण प्रकाशित कर देता है। यह वह ज्योति है, जो पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक मानव को प्रभापूर्ण कर देती है।" सचमुच, घृणा हृदय को खोखला कर देनेवाला कीट है; यह स्वास्थ्य, सौंदर्य

---

१ मिलाओ विद्यारण्य स्वामिन् का जीवन्मुक्ति-विवेक, अध्याय २ [देखो टिप्पणी]।

और सुख की मूलोच्छेदिनी है और स्वयं एक उन्मादपूर्ण चित्त-भ्रांति है। जिस प्रकार किसी एक पदार्थ को लाल रंग का देखने की भावना करके लाल काँच का चश्मा धारण करनेवाले व्यक्ति को सभी पदार्थों का वर्ण लाल दिखाई पड़ना अनिवार्य है उसी प्रकार जिस मस्तिष्क में अपने शत्रु के प्रति घृणा का भाव होता है वह समस्त संसार के प्रति कर्कशता का व्यवहार करने लगता है। घृणा के संस्कार रूपी इस विष को नाश करनेवाली ओषधि प्रेमाभ्यास के अतिरिक्त और दूसरी कोई है ही नहीं। उक्त प्रेमाभ्यास यदि विश्व-बंधुता में परिणत हो जाय तो शत्रु के प्रति भी प्रेम-भाव हो जाएगा। घृणा भरपूर बदला ले लेने के पश्चात् तुरत शांत हो जाती है[1], यह प्राचीन शिक्षा अपना अभिप्राय बहुत ही कम अंशों में पूर्ण करती हुई पाई गई है। क्योंकि घृणा अन्य मनोभावों की भाँति उद्दीपन पाकर बढ़ती रहती है। बुद्ध के निम्नलिखित कथन का यही अभिप्राय है—"घृणा कभी भी घृणा के द्वारा शांत नहीं हो सकती।

---

१ जीवन जीवन के लिए दाँत दाँत के लिए आदि (बाइबिल : Exodus, २१, २४)।

घृणा प्रेम के द्वारा ही शांत होती है। यही इसकी प्रकृति है[1]।" यह सत्य है कि क्षमा प्रायः भय का प्रच्छन्न रूप है। किंतु इस प्रकार का भीत साधु एक निर्बल से अधिक अधम नहीं समझा जा सकता। इसीलिए संसार के समस्त धर्म अपकार के प्रति घृणा करने की शिक्षा देते हैं[2]। बौद्ध-धर्म में भी देवी और देवता सत्य का रक्षण करने के लिए अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित प्रदर्शित किए गए हैं[3]। पर घृणा की भी ठीक वैसी ही स्थिति है जैसी प्रेम की, यदि वह निर्बलता के भाव से नहीं की गई है। जो लोग घृणा

---

१ धम्मपद १-५।

२ वेद कहते हैं—"ईश्वर ने असत्य के साथ घृणा जोड़ दी है" (शुक्ल यजुर्वेद १९-७७, तैत्तिरीय ब्राह्मण, २-५-२-३)। मिलाओ बाइबिल: Amos ५, १५; Job ४०, २ से; कुरान: सूरा २२, शेर ४०। यही बात हिंदुओं की गीता और दुर्गा में प्रमाणित की गई है और संसार के समस्त महाकाव्यों में पाई जाती है। यथा—रामायण, महाभारत, इलियड आदि।

३ मिलाओ सुकरात का कथन—"यदि संसार के शासक अन्यायी के बदले न्यायी को नहीं पसंद करते तो जीने से मरना अच्छा है" (देखो James Seth : Ethical Principles, the Problem of God, पृष्ठ ४२१)।

करने की ओर झुक जाते हैं वे संसार के सर्वोत्तम कार्यकर्ता हुए होते, यदि उनकी घृणा की अग्नि बुझ गई होती और उनकी शक्ति उच्चतर कार्य करने के लिए स्वतंत्र होती[1]। घृणा की इस आग को बुझाने के लिए प्रेम का आह्वान करना होगा। इस दृष्टि से देखने से प्रेम का अभ्यास—अर्थात् धर्म का वास्तविक स्वरूप—दर्शन के उपदेशों से उच्चतर दिखाई देता है और 'अहिंसा' अथवा एकांत क्षमा का नियम नीति के कर्कश नियमों की अपेक्षा अच्छा है[2]।

---

१ उनके लिए शेक्सपियर के कथनुसार कहा जा सकता है :—

"कोई भीषण वस्तु जिसमें अत्यधिक शक्ति भी हो यदि बहुत अधिक रोष से भरी हुई है तो अपने ही हृदय को निर्बल कर देती है।"

"जहाँ अति हो वहाँ से उसे निर्मूल कर दे, क्योंकि उसके रहने से तू अपना ही शत्रु है, अपनी प्यारी आत्मा के लिए तू अत्यंत क्रूर है।"

२ महाभारत, उद्योग पर्व ३३-४८ से; और द्रोणपर्व १९८-५९ [देखो टिप्पणी]। मिलाओ पैस्कल :—"बुद्धि एवं शरीर के मध्य जो अपरिमित अंतर है वह ज्ञान एवं उदारता के मध्य का

'अहिंसा' (अघृणा) अथवा 'विश्व-प्रेम' का सिद्धांत ही संसार के समस्त धार्मिक उपदेशकों की सर्वोच्च शिक्षा है[1]। कभी-कभी भूल से बुद्ध इस सिद्धांत के मूल निर्देशक समझे जाते हैं और इसीलिए इसका मूल एवं महत्त्व भ्रमवश वेद-विरुद्ध माना जाता है। वस्तुतः यह सिद्धांत पुरातन वैदिक धर्म में अज्ञात काल से पाया जाता है[2]। किंतु बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक ने

इस सिद्धांत का मूल वेद है और इसकी पूर्णता बौद्ध-धर्म में हुई

अपार अंतर सूचित करता है" (मिलाओ Adams: 'Secret of Success,' पृष्ठ २२२)।

१ मिलाओ लॉटज़ू: "अपकार का प्रतिकार सद्व्यवहार से करो"; और क्राइस्ट: "अपने शत्रुओं को प्यार करो"— (Legge: 'Texts of Taoism,' भाग १, पृष्ठ ९२; और बाइबिल: Matthew, ५, ४४)। [मिलाओ Smith: 'The Christian and Buddhist conceptions of love' (Buddhist Review, London: १९०९, भाग १)]।

२ देखो ऊपर, पृष्ठ ३१ और उसकी पाद-टिप्पणियाँ। मिलाओ ऋग्वेद ६-४८-१०; सामवेद २-९७४; ईशावास्योपनिषद्,—६ [देखो टिप्पणी]। 'अहिंसा' शब्द पतंजलि के योगसूत्र में भी प्रयुक्त हुआ है, दूसरा पाद, तीसवाँ सूत्र। बौद्ध-धर्म और वेदांत में नैतिकता के लिए देखो Paul Dahlke का

निस्संदेह इसको सर्वोत्तम स्वरूप दिया, क्योंकि उन्होंने प्रेम को पूर्ण आत्मत्याग के आश्रित माना है। वे कहते हैं—"अपने अपराध (कर्म) में विश्वास करते हुए मनुष्य दूसरों के हाथों द्वारा अपने कर्मों का प्रतिफल पाकर उस कष्ट को सरलतापूर्वक सहन कर सकता है। किंतु हम तो उसे ही सच्चा साधु कहेंगे जो अटल क्षमा के बल से युक्त होकर वेड़ी और फाँसी के घोर अपराधों को भी अपने शत्रु के प्रति किंचिन्मात्र घृणा का भाव दिखाए विना ही शिरोधार्य करता है, चाहे वह अपनी पूर्ण अनपराधता से भली भाँति अभिज्ञ हो[१]।" इस सर्वक्षमामय प्रेम का मधुरालाप बौद्ध-साहित्य[२] की समस्त श्रेणियों में गूँज रहा

'Buddhist Essays,' भिक्षु शीलाचार द्वारा अनुवादित, पृष्ठ १४८।

१ धम्मपद : २६-१७। [देखो टिप्पणी]।

२ यथा—अवदान-कल्पलता की कहानियों में। [मिलाओ लोयड : 'Buddhism, the Religion of Love' (Buddist Review : लंदन, १९१०, भाग २)]। [मिलाओ डा. विल्सन : 'Cave-temples of Western India,' अध्याय ९, § २ :—"बौद्ध-धर्म का गुफाओं के शिलालेखों में सामान्य संकेत है 'क्षमा का धर्म' "]।

है और यह अपने मधुरिमामय स्वरों से सबको ओत-प्रोत करता हुआ अबोध एवं कलाहीन सरलता के दिनों की गमक उत्पन्न करता है[1]। बौद्ध-धर्म के एक छोर से दूसरे छोर तक और एक भाग से दूसरे भाग तक फैलने में आश्चर्य ही क्या है[2], क्योंकि मनुष्य-जाति अप-

---

१ मिलाओ 'थेरा-गाथा' और 'थेरी-गाथा'।

२ मिलाओ हॉस्वो : 'Traces of Buddhism in Norway before the introduction of Christianism (पेरिस)। मिलाओ अल्फोन्ज जरमेन : 'Buddhism in ancient Mexico; according to recent discoveries' (Etudes Franciscaines; पेरिस; १९०५; भाग १३)। क्रिश्चियनों के जोसेफाट अथवा अरब के यूदासफ साधु वे ही हैं जो बोधिसत्त्व (बुद्ध)। [मिलाओ डैमस्कस के जान द्वारा लिखित बलराम और जोसाफाट की कहानी और देखो लीब्रेश का 'Jahrbuch']।

मेक्सिको का पवित्र माया-पाषाण वस्तुतः बौद्ध-धर्म का नहीं है ;—माया एक प्रांतिक बोली का नाम है। इसी में पत्थर पर का शिलालेख खोदा गया है। इसी प्रकार ग्वाटेमाला नाम गौतम से निकला हुआ नहीं है ;—'ग्वा' शब्द का अर्थ है 'स्थान,' यथा—निकाराग्वा, एँटीग्वा आदि में [देखो डा. पैरी-कृत 'Sacred Maya Stone of Mexico'। डॉन ज्वारस लिखित ग्वाटेमाला के इतिहास में इसकी एक दूसरी ही व्युत्पत्ति दी हुई है]।

राध हो जाने पर क्षमा और प्रेम की अपेक्षा करती है। वह ऐसी दया चाहती है जिससे वह जीवित रह सके। संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि ने भी कहा है—"क्षमा का गुण क्लिष्ट नहीं है। यह दोहरा आशीर्वाद है—एक क्षमा किए जानेवाले को, दूसरा क्षमा करनेवाले को। यह ईश्वरी गुण है। सांसारिक शक्ति उसी समय ईश्वर की शक्ति के अत्यंत संनिकट पहुँचती है जिस समय क्षमा न्याय पर अपना रंग चढ़ा देती है[1]।" प्रेम-साम्राज्य के मार्ग का यह अन्वेषण और व्यक्ति की आत्मा में उसका स्थापन मानव-प्रतिभा और स्वछंद वृत्ति के योग से संपन्न किया हुआ सर्वोत्तम कार्य है। यही बुद्ध के प्राप्त करने का, क्राइस्ट के प्राप्त करने का और संक्षेप में मानवता में देवत्व प्राप्त करने का सच्चा मार्ग है।

यहीं पर दर्शन और धर्म दोनों का मेल होता है। दर्शन अपने तार्किक हेतुओं से धर्म के इस वैध शासन का समर्थन करता है कि शत्रु से प्रेम करना चाहिए। क्योंकि यदि जीवन का स्वरूप मनुष्य ने अपनी कल्पना से खड़ा

---

१ Shakespeare : Merchant of Venice (अंक ४, दृश्य २, पंक्ति १८४ से)

किया है तो मनुष्य ने जिन्हें अपना शत्रु बना लिया है उनसे घृणा करने से उसे विरत होना चाहिए[1]। किंतु यदि जीवन वास्तविक एवं सत्य माना जाय तो जीव को सब प्रकार से अपने को घृणा से बचाना चाहिए, क्योंकि घृणा उन्माद, हत्या, आत्मघात, पश्चात्ताप अर्थात् शरीर-नाश और बुद्धि-भ्रष्टता का प्रधान कारण है[2]।

---

१ यह उपनिषदों की शिक्षा है (मिलाओ ईशावास्योपनिषद्, ६)। शेक्सपियर यह कहते हुए उस शिक्षा के बहुत संनिकट पहुँच जाते हैं—

"यदि हमने भूतों को चिढ़ा दिया हो तो हमें अपने मन में यह विचार करना चाहिए और इसी विचार से सब बातें बन जायँगी कि जिस समय वे दृश्य सामने आ रहे थे, हम ऊँघ रहे थे। और तब यह अशक्त एवं अलस विचार फिर हमें अभिभूत न कर सकेगा, केवल एक स्वप्न सिद्ध होगा" आदि।

—(A Midsummer Night's Dream : 5-254 ff)।

२ "प्लेटो ने बड़े मनोहर ढंग से कहा है कि मनुष्य को अपने शत्रुओं से भी घृणा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यदि उसमें कुछ अवसरों पर यह मनोभाव उठता रहा तो अन्य अवसरों पर स्वयं इसका उद्रेक हो जायगा। यदि आप शत्रु से घृणा करते हैं तो आपके चित्त की ऐसी बुरी बान पड़ जायगी

धर्म शब्द का व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ है 'जो धारण करे'। संसार आर्कषण के नियम द्वारा एक ध्रुव पदार्थ है और प्रेम इस आर्कषण का सर्वोत्तम स्वरूप है, क्योंकि इसका स्वरूप चैतन्य है। इसलिए प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है और यह 'अहिंसा परमो धर्मः' की सत्यता को प्रमाणित करता है (देखो द्वितीय खंड, टिप्पणियों के अंत का अनुलेख)।

कि वह धीरे-धीरे ऐसे लोगों के ऊपर भी फट पड़ा करेगा जो आपके मित्र अथवा आपसे उदासीन होंगे। हम देख सकते हैं कि कैसी सुष्ठु रीति से सदाचार की यह शिक्षा,—जो घृणा के मनोभाव में घोर शत्रुता बतलाती है, आलंबन में नहीं—उस उत्कृष्ट नियम से मेल खाती है, जिसका आदेश उक्त दार्शनिक के होने के सहस्रों वर्ष पूर्व संसार को दिया जा चुका था। किंतु इसके बदले हम हार्दिक खेद के साथ यह देखते हैं कि हम लोगों में से बहुत-से भलेमानुसों का मन निकृष्ट सिद्धांतों को मानते रहने से ऐसा बिगड़ गया है और वे एक-दूसरे से इस प्रकार पृथक् हो गए हैं, जो हमें विवेक अथवा धर्म के आदेशों के नितांत विरुद्ध ज्ञात होता है।"
[देखो टिप्पणी]।

बुद्ध-मीमांसा

(द्वितीय खंड)

टिप्पणियाँ

[सूचना—पृष्ठ-संख्या इस पुस्तक के प्रथम खंड की है और टिप्पणियों की संख्या पृष्ठों में दी हुई पाद-टिप्पणियों की, जहाँ 'देखो टिप्पणी' लिखा है।]

वंदना

पृष्ठ ३

टिप्पणी १. अश्वघोष-कृत बुद्धचरित, १-१ :—

श्रियं परार्द्ध्यां विदधद्विधातृजित्
तमो निरस्यन्नभिभूतभानुभृत् ।
नुदन्निदाघं जितचारुचन्द्रमाः
स वन्द्यतेऽर्हन्निह यस्य नोपमा ॥

प्रस्तावना

पृष्ठ ४

टिप्पणी १. Sully's Human Mind, भाग २, परिशिष्ट, पृष्ठ ३६९ :—

"मानसिक तत्त्व और शारीरिक तत्त्व

दोनों......एक ही पदार्थ के संश्लिष्ट गुण हैं।"

Green's Prolegomena to Ethics, निबंध ३३ :—

"हमारी प्रकृति की परंपरा-संबंधी धारणा और उस परंपरा को बाँधनेवाले संबंध सभी अध्यात्म-मूलक हैं।"

टिप्पणी २. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४-५-६ :—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।"

मुंडकोपनिषद्, २-२-५ :—

"तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः।।"

पृष्ठ ५

टिप्पणी १. छांदोग्योपनिषद्, ६-१-३ :—

"येन...अविज्ञातं विज्ञातं (भवति)।"

बृहदारण्योकोपनिषद्, ४-५-६ :—

"आत्मनि...विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्॥"

बाइबिल के वचन :—

"मनुष्य में आत्मा का निवास है" (Job xxxii, 8);

"मनुष्य की आत्मा परमेश्वर का दीपक है" (Proverbs xx, 27) ;

"और आत्मा परब्रह्म के पास लौट जायगी" (Ecclesiastes xii, 7) ;

"ईश्वर एक आत्मा है, और जो उसकी पूजा करते हैं उन्हें आत्मा के ही द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिए।" (John iv, 24) ;

"वह आत्मा के भीतर रहस्यों का कथन करता है।" (I Corinthians xiv, 2)।

टिप्पणी २. अवेस्ता के धर्म में 'अहुर मज्द' शुद्धात्मा (वेदों का ब्रह्म) है; 'स्पेन्त मन्युस्' ज्योति अथवा ज्ञान का तत्त्व (शुद्ध चित्, ईश्वर) है, 'अंग्र मन्युस्' अंधकार अथवा अज्ञान का तत्त्व (अशुद्ध चित्त, माया) है। इस अज्ञान के तत्त्व में कल्पना-शक्ति (द्रुज, अर्थात् प्रतारणा) स्वाभाविक होती है, जो आत्मा की इच्छा है।

पृष्ठ ६

टिप्पणी २. तैत्तिरीयोपनिषद् (२-८) अन्य देवताओं

के साथ-साथ निम्नलिखित देवताओं की श्रेणियों का भी उल्लेख करता है :—अर्थात् गंधर्व, पितृ, आजानज, कर्मदेव, देवता आदि ।

पृष्ठ ७

और बृहदारण्यकोपनिषद्, ४-३-३३, (अन्य देवताओं के साथ-साथ) जित-लोक-देव, ब्रह्मलोक-देव आदि का उल्लेख करता है ।

बाइबिल (Daniel vii, 10 से) :—

"......अतीतकाल बैठा हुआ था, उसके वस्त्र हिम की भाँति श्वेत थे......सहस्रों-सहस्र व्यक्ति उसकी सहायता करते थे और दश-सहस्र बार दश-सहस्र व्यक्ति उसके समक्ष खड़े होते थे ।"

कुरान के वचन :—

सूरा १३-१२ : "प्रत्येक व्यक्ति के आगे और पीछे देवदूतों की श्रेणी है, वे ईश्वर के आदेश से उसको देख-भाल करते हैं ।"

[पृष्ठ ७ (क्रमागत)]

सूरा १६-२ : " वह स्वयं आदेश देकर देवदूतों को प्रेरित करेगा कि वे उसके सेवकों में से उस व्यक्ति के पास आत्मा को लेकर जायँ जो उसे प्रसन्न रखता है।"

सूरा ३५-१ : " उस ईश्वर की जय हो जो स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माता है, और फिरिश्तों को दूत के रूप में नियुक्त करता है।"

सूरा ४२-५०, ५२ : " ईश्वर मनुष्य से प्रत्यक्ष वार्तालाप नहीं करता, वरन् वह छाया-रूप से अथवा परदे की ओट से बोलता है। अथवा वह किसी दूत को आज्ञा देकर भेजता है और अपने इच्छानुसार उसके द्वारा रहस्योद्घाटन कराता है, क्योंकि वही सबके ऊपर है। हे ज्ञानी ! इस प्रकार मैंने अपने आदेश से तुम्हारे पास फिरिश्ता (गैब्रिल) को रहस्योद्घाटन करने के लिए भेजा है।"

सूरा २-९१ : " बताओ, गैब्रिल फिरिश्ता

का कौन शत्रु है ? ईश्वर भी उसका शत्रु हो जायगा, क्योंकि उसने ईश्वर की अनुमति से कुरान को तेरे हृदय में प्रकट किया है, वही कुरान जो पूर्व के रहस्योद्‌घाटनों का पुष्टीकरण है।"

सूरा ४२-५२ : (ठीक जैसा ऊपर का वचन है)।

सूरा ५३-१ : " कुरान रहस्योद्‌घाटन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो उसे बतलाया गया है। किसी भीषण शक्ति वाले (गेब्रिल फिरिश्ता) ने उस बुद्धिमान् पुरुष को इसकी शिक्षा दी है।"

पृष्ठ ८

टिप्पणी १. मिलाओ ऋग्वेद (प्रारंभ) :—

" अग्निमीडे पुरोहितम्। "

मैं यज्ञ के पुरोहित अग्नि की वंदना करता हूँ।

महाभारत, वनपर्व, २००-१३ :—

" नावं वेदमयीं कृत्वा
तारयन्ति तरन्ति च। "

[पृष्ठ ८ (क्रमागत)]

वही, शांतिपर्व, ३२७-५० :—

" स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदाः सृष्टाः
स्वयंभुवा ॥ "

तात्पर्य—सर्वप्रथम अग्निद्वारा ही ऊर्द्ध्व-लोकों की स्थिति के ज्ञान से धार्मिक भावना जागरित हुई।

टिप्पणी २. वाइविल के वचन :—

वाइविल में आग को अग्निदेव का प्रतीक माना है। जलती हुई झाड़ी और सिनाई पर्वत की आग में मूसा के समक्ष ईश्वर प्रकट हुए थे। (Exodus ३, २; १९, १८)।

" और ईश्वर के समक्ष अग्नि प्रकट हुई और उसने वेदी पर की वलि एवं मज्जा को भस्म कर दिया। उसे जब सब लोगों ने देखा तो चिल्ला उठे और मुँह के वल गिर पड़े। " (Leviticus ९, २३-२४)।

" हमने उसकी वाणी अग्नि के बीच

[पृष्ठ ८ (क्रमागत)]

में से सुनी है। आज हमने देखा कि ईश्वर मनुष्य से वार्तालाप करता है।" (Deuteronomy ५, २५)।

इस प्रकार से आविर्भूत वह 'पवित्र अग्नि' तब तक बिना बुझाए प्रज्वलित रखी गई जब तक मंदिर (Tebernacle) का पूजन भली भाँति संपन्न नहीं हो गया, क्योंकि उपासना-संबंधी कामों के लिए वही अग्नि काम में आ सकती है। (Leviticus ६, १२-१३)।

सॉलोमन (Solomon) के द्वारा मंदिर की स्थापना के समय (II Chronicles vii, 1) और एलिजा (Elijah) द्वारा दश जातियों में ईश्वर-पूजन का प्रतिपादन करने के समय यह दिव्याग्नि पुनः प्रज्वलित की गई (I Kings xviii, 38 ; मिलाओ I Kings xix, 12 भी : 'अग्नि के अनंतर शांत मंदध्वनि')।

जब वेदी स्थान-स्थान पर घूमती

[पृष्ठ ८ (क्रमागत)]

रहती थी तो उसकी भस्म ले ली जाती, और भस्म रखने के पात्रों में रख ली जाती थी। (Numbers iv, 13)।

ईश्वर ने ईसा (Isaiah), इजकील (Ezekiel) और जॉन (John) को अग्नि के मध्य अपना स्वरूप दिखाया। (Isaiah vi, 4-5 ; Ezekiel i, 4 ; Revelation i, 13-15)।

यह कहा जाता है कि वह अपने पुनरागमन के समय इसी प्रकार प्रकट होगा। (II Thessalonians i, 8)।

उस पवित्र आत्मा का अवतरित होना ज्वाला की शिखाओं अथवा अग्नि की जिह्वाओं से प्रकट हो रहा था। (Acts ii, 3)।

दानियल (Daniel) कहता है :—
"एक अग्नि का स्रोत निकला और उसके समक्ष आया।" (अतीत-काल)। (Daniel vii, 10)।

और वह अपनी प्रजा इसराइल को एक अग्नि-स्तंभ के रूप में मरुभूमि में से ले गया। (Exodus xiii, 21)।

पृष्ठ ६

टिप्पणी २. हिब्रू भाषा के सेराफिम (Seraphim) का व्युत्पत्त्यर्थ है 'प्रज्वलित प्राणी'। (Isaiah, Ch. vi)।

[योरोपियन भी अग्नि और आत्मा के संबंध में विश्वास करते हैं। देखो Frazer's Golden Bough, द्वितीय भाग, पृष्ठ २३२]।

महाभारत, वनपर्व, २६१-१३ :—

"तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम्। आदि, आदि।" प्रसंग से पता चलेगा कि यह वचन देवताओं के लिए प्रयुक्त हुआ है और उनके तैजस शरीर के अलौकिक गुणों का कथन करता है।

साख्य-दर्शन पर अनिरुद्ध का भाष्य (५-११२) :—

"सूर्य्यादिलोके तैजसः शरीरः।"

ऋग्वेद, ९-११३-४ :—

" लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः। "

(मिलाओ शारीरक भाष्य, १-२-२४ : " अग्निशरीरा वा देवाः ")।

टिप्पणी ३. ऋग्वेद, १-१-२ :—

" स देवाँ एह वक्षति ।"

वही, १-१२-१ :—

" अग्निं दूतं वृणीमहे। "

(सामवेद, १-३ ; शुक्ल यजुर्वेद, २२-१७ ; कृष्ण यजुर्वेद, २-५-८-५ ; अथर्ववेद २०-१०१-१ में भी)।

वही १-२२-१० :—

" आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्। वरूत्रीं धिषणां वह॥ "

तात्पर्य—अग्नि पृथ्वी पर देवताओं को ही नहीं वरन् उनके साथ देवियों को भी ले आएगी।

पृष्ठ १०

टिप्पणी १. ऋग्वेद, १-१४०-१ :—

[पृष्ठ १० (क्रमागत)]

" वेदिषदे प्रियधामाय...प्र भरा योनिमग्नये। "

वही, ३-५-७ :—

" आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्। "

यह ध्यान देने योग्य है कि घृत-पात्र को योनिवत् त्रिभुजाकार निर्माण करने में कोई आध्यात्मिक रहस्य नहीं है। ऐसा करने का कारण यह है कि ऊपर से जो घी की बूँदें अग्नि में टपकती हैं उनसे अग्नि की वृत्ताकार लहरें केंद्रीभूत होकर उठती हैं। यदि पात्र वृत्ताकार हो तो घी की बूँदें न जल सकेंगी और धीरे-धीरे अग्नि बुझ जायगी। किंतु यदि पात्र त्रिभुजाकार है तो वृत्ताकार लपटें, कुंड के छोर तक फैल जाने के पहले, घृत-पात्र के धरातल से टकराती रहती हैं। इसलिए तीन छोर तो निरंतर प्रज्वलित रहते हैं जिससे आवश्यक अग्नि बनी रहती है, अग्नि बुझने नहीं

पाती। वास्तविक कारण यही है कि त्रिभुजाकार अग्निकुंडों अथवा यज्ञकुंडों का अधिक आदर किया गया।

पृष्ठ ११

अथर्ववेद, ३-१२-८ :—

"पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्।"

ऋग्वेद, ४-५८-५ से ८ :—

"एता अर्षन्ति…शतव्रजाः…
घृतस्य धाराः।"

"एते अर्षन्त्युर्मयो घृतस्य मृगा इव।"

"घृतस्य धाराः…भिन्दन्नूर्मिभिः
पिन्वमानः।"

"अभि प्रवन्त समनेव योषाः…
अग्निं घृतस्य धाराः।"

तात्पर्य—यज्ञाग्नि में घृत-बिंदुओं की धारा निरंतर टपक रही है। घृत-पात्र ठीक इतनी ऊँचाई पर है कि उससे यज्ञकुंड तक की लंबाई सौ बिंदुओं की पंक्ति है (५); घृत-बिंदु उसी प्रकार एक-दूसरे का अनुधावन कर रहे हैं जिस प्रकार

[पृष्ठ ११ (क्रमागत)]

धनुर्धर के सामने मृग-समूह एक-दूसरे के पीछे भागता है (६); विंदु निरंतर गिर रहे हैं और ज्यों-ज्यों नीचे आते जाते हैं बड़े दिखाई पड़ने लगते हैं (७); विंदु प्यारी स्त्री के समान अग्निज्वाला का आलिंगन करते हैं और वह भी अपने आलिंगनकर्ता पति पर मुसकुरा रही है।

हवन का यह ढंग अन्य धर्मों में भी है। मिलाओ Barrett : The Magus, पुस्तक २, भाग २, पृष्ठ ८७ : "आकाशवाणी में कथित ईश्वर के समक्ष जलनेवाले दीपकों में, जिनका उल्लेख रहस्योद्घाटन में आया है, दो जैतून वृक्ष पवित्र तेल टपका रहे थे।" (बाइबिल : Zechariah iv, 3, 11-14; Revelation xi, 3, 4)।

संभवतः सौ गुरियों को एक सूत्र में गुहकर उनका जप करने (माला-जप) का

[पृष्ठ ११ (क्रमागत)]

आरंभ इन्हीं सौ विंदुओं की धारा (शतन्नज) के आधार पर प्रचलित हुआ है।

ऋग्वेद, १०-१०८ : शर्मा और पणिस् की कथा, विशेषतः द्वितीय मंत्र :—"पणिस् (संभवतः पण-पूजक) दूर हो जायँ"; "दूरमित पणयो वरीयः।" उन्होंने ऋग्वेदकाल में ही उपप्लव आरंभ कर दिया था।

महाभारत, वनपर्व, २२८-५ :—

"रुद्रमग्निमुमां स्वाहां प्रदेशेषु महाबलम्।
यजन्ति पुत्रकामाश्च पुत्रिणश्च सदा जनाः॥"

वही, २२९-२७, ३१ :—

"रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहुः।"

"रुद्रस्य वह्नेः स्वाहायाः पण्णां स्त्रीणांश्च भारत।"

तात्पर्य—रुद्र (लिंगम्) अग्नि है और उनकी स्त्री उमा (योनि) 'देवोत्पादिका शक्ति' (स्वाहा अथवा अग्नि की आहुति) है।

गोवृषध्वजः (जिसकी ध्वजा का चिह्न गो और वृषभ हैं) शब्द 'लिंगम्' (शिव) के लिए प्रयुक्त होता है । इसका ठीक-ठीक अर्थ तभी लगता है जब 'लिंगम्' को यज्ञ का प्रतीक माना जाय । क्योंकि यज्ञ सब प्रकार से गो-घृत के ही आश्रित है । देखो महाभारत, २२९-२७ ; और मिलाओ ऋग्वेद, १०-५-७ :—

"असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन् अदितेरुपस्थे । अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्वे आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥" और "उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् । उप ऋषभस्य रेतसि उपेन्द्र तव वीर्ये ॥" भी ऋग्वेद, ६-२८-८ ।

पृष्ठ १२

टिप्पणी १. निम्नलिखित उद्धरण ऋग्वेद और बाइबिल के तुलनात्मक अध्ययन का एक नमूना है । बाइबिल कहती है :—

"और उस दिन ऐसी घटना घटेगी कि एक मनुष्य एक गो और दो भेड़ें

[पृष्ठ १२ (क्रमागत)]

पालेगा। वे सब बहुत अधिक दूध देंगी और वह उस दूध का घी खाएगा। यह घटना अवश्य घटेगी।"

"और वहाँ एक राज-मार्ग होगा और एक पथ। यह 'पवित्रता का पथ' कहलाएगा। मैले-कुचैले (अशुद्ध व्यक्ति) उस पर से न जा सकेंगे। यद्यपि उस मार्ग में भ्रमण करनेवाले मूर्ख होंगे, पर वहाँ कोई भूल न करेगा। वे आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करेंगें तथा करुणा एवं आह भाग जायँगी।" (Isaiah vii, 21-22, और xxxv, 8-10)।

इससे ऋग्वेद को मिलाओ :—

"दूध देनेवाली उदार और अबोध गौ को मत मारो।" "कर्मकांड में गौ का घृत (अग्नि में आहुति देने पर) देवता की जिह्वा और अमरता की नाभि कहा जाता है।"

"अग्नि हम लोगों को पवित्रता के

[पृष्ठ १२ (क्रमागत)]

मार्ग (सुपथ) पर ले जाती है। यह हमें पापों से शुद्ध कर देती है। दूसरे शब्दों में यह हमें पवित्रता के मार्ग पर चलने योग्य कर देती है (युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः)। यह हमारा उचित नेतृत्व कर सकती है। क्योंकि देवों से संबंध होने के कारण इसके पास सभी प्रकार का ज्ञान है (विश्वानि वयुनानि विद्वान्)। (जिससे इस मार्ग पर भ्रमण करनेवाले मूर्ख होते हुए भी कोई भूल न कर सकेंगे) और इस प्रकार हम सब इस मार्ग में आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे (राये)।"

[मूलः—" मा गामनागामदितिं वधिष्ट।" " घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः।" " अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।"—ऋग्वेद-संहिता, ८-१०१-१५, ४-५८-१, १-१८९-१]।

[पृष्ठ १२ (क्रमागत)]

इस प्रकार बाइबिल का राजमार्ग (Isaiah xxxv, 8) और ऋग्वेद (१-१८७-१) का पवित्र-पथ (सुपथ) एक ही है। गो-पालन के विषय में बाइबिल का भविष्य-कथन (Isaiah vii, 21) वेदों के गो-वध-निषेध (ऋग्वेद, ८-१०१-१५) से मेल खाता है ; बाइबिल का घृत-भोजन वेदों में वर्णित घृताहुति के अवशिष्ट भाग को ग्रहण करने से मिलता है (महाभारत, अनुशासनपर्व, ९७-७ ; भगवद्गीता, अध्याय ३, १० से १६, २० से २१)।

वस्तुतः इन दोनों में इतनी अधिक समानता है कि एक महाशय तो ऐसी कल्पना करने का भी लोभ संवरण नहीं कर सके कि बाइबिल में जो भेड़ों के पालने का उल्लेख है (Isaiah vii, 21) वह भी वैदिक धर्म की इस आज्ञा से मिलता है कि उपासना का कोई कार्य करते समय भेड़ के शुद्ध ऊन से बने आसन पर बैठना चाहिए।

———

प्रथम अध्याय

पृष्ठ १४

टिप्पणी १. बहुत-से लोग कल्पना करते हैं कि बुद्ध का वास्तविक नाम समंतभद्र था। अमरकोश में यह नाम बुद्ध के पर्यायों में दिया हुआ है (१-१-१-८)। इसके पश्चात् यह भी कल्पना की जाती है कि बुद्ध की जिस मूल-प्रतिमा पर पीछे से मंदिर निर्मित हुआ वह बुद्ध के किसी वंशज ने ने बनवाई है, जो कपिलवस्तु के राज-सिंहासन पर उनका उत्तराधिकारी हुआ था। "क्रमपूर्वक देखने से पता चलेगा कि समंत के पुत्र पुण्यभद्र के जयसेन (जयसिंह) और कुमारसेन (कुमारसिंह) नामक पुत्रों ने अपने पितरों के पवित्र स्मारक के लिए उक्त प्रतिमा का स्थापन किया है। दूसरी प्रतिमा उस-पर के शिलालेख के अनुसार राजा विजयभद्र की निर्माण कराई हुई है,

जिसके वारे में और कुछ भी ज्ञात नहीं है।"—हैमिल्टन का Description of the Ruins of Buddh Gaya. (रायल एशियाटिक सोसाइटी के कार्य, लंदन १८३०, भाग २) । [मिलाओ Dr. Puini : Di una singolare incarnazione di Samantabhadra Bodhisattva (Rivista degli studi Orientali, Rome, 6th year, 1914, pp. 989-998)] ।

अभी इस विचार के लिए पुष्ट प्रमाण की आवश्यकता है।

पृष्ठ १६

टिप्पणी १. हेमाद्रि, व्रतखंड, अध्याय १५ :—

"अनेन विधिना पूर्वं द्वादशी समुपोपिता। शुद्धौदनेन बुद्धोऽभूत् स्वयं पुत्रो जनार्दनः॥" भविष्यपुराण, २-८३ में भी। वहाँ यह वात इस प्रकार और स्पष्ट रूप से लिखी है :— "शुद्धौदनेन तस्याऽभूत् स्वयं पुत्रो जनार्दनः।' (२-८३-११६)। अर्थ :—"शुद्धो-

दन के गुण अर्थात् भोजन की शुद्धता के कारण स्वयं ईश्वर उनके पुत्र हुए।"

टिप्पणी २. अमरकोश, १-१-१-१० :—

" गौतमश्चार्कबन्धुश्च
मायादेवी सुतश्च सः।"

अभिधान-चिंतामणि, २-१४९ से १५१ :—

" शाक्यसिंहोऽर्कबान्धवः।"

वैजयंती-कोश, १-१-३५ :—

" गौतमश्चार्कबन्धुश्च।"

टिप्पणी ३. ऋग्वेद, ३-५-४ :—

" मित्र (अथवा सूर्य) अत्यंत प्रज्वलित अग्नि है।"

(" मित्रोऽग्निर्भवति यत्समिद्धः ")।

वही, १०-४५-१ :—

" अग्नि पहले-पहल सूर्य-रूप में उत्पन्न हुई।"

(" दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः ")।

पृष्ठ १७

टिप्पणी १. अश्वत्थ अथवा बोधितरु का जो संमान बौद्ध करते हैं उसका मूल हिंदुओं के

प्राचीन अग्नि-पूजन में उपलब्ध होता है। इस वृक्ष की लकड़ी विशेषतः अग्नि-पूजन के उपयोग में लाई जाती थी, इसलिए हिंदुओं में यह वृक्ष पवित्र माना जाने लगा। बुद्ध ने इस वृक्ष के प्रति वही संमान दृढ़ रखा और उनके अनुयायियों ने उन्हीं से इसे सीखा। देखो र्‌हीस डेविड्स, 'Buddhist India,' पृष्ठ २३१।

टिप्पणी २. 'उष्णीष-धारण' अथवा पगड़ी बाँधना वैदिक साहित्य में और विशेषतः अग्निष्टोम यज्ञ के अनुष्ठान में विख्यात है।

पृष्ठ १८

टिप्पणी १. चैत्य (कोश) :—"चैत्यमाज्याधिवासनम्" इति वैजयंती, ३-६-९०।

यादव के वैजयंती-कोश में चैत्य का अर्थ है "घी को स्वच्छ करना" (ऑपर्टवाला संस्करण, पृष्ठ ९० और ४९७)। इसमें घृताहुति के द्वारा अग्नि-पूजन का स्पष्ट संकेत है। मिलाओ पाणिनि, अष्टाध्यायी, ३-१-१३२ :—

" चित्याग्निचित्ये च, " इससे चैत्य वना।

मिलाश्रो मुग्धवोध, वॉटलिंकवाला संस्करण, सेंट पीटर्सवर्ग, २६-११।

पृष्ठ १६

टिप्पणी २. वौद्ध सुत्त (र्हीस डेविड्स) :—

" आनंद ! दशों ब्रह्मांडों के देव-गण तथागत का दर्शन करने के लिए वहु-संख्या में एकत्र हुए हैं। कुसीनारा के उपवत्तन और मल्लों के साल-आश्रम के चतुर्दिक द्वादश संघों में वाल के अग्रभाग की नोंक के वरावर स्थान भी शेष नहीं है, सव उन शक्तिशाली देवों से भर गया है। " और पुनः—" आनंद ! आकाश में जीवात्माएँ रहती हैं। " " आनंद ! पृथ्वी पर आत्माएँ रहती हैं। " (महापरि-निर्वाण सूत्र, पृष्ठ ८८-८९)। धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र में कुछ स्वर्गों और देवताओं की श्रेणियाँ भी कही गई हैं (वौद्ध सुत्त, पृष्ठ १५४)।

पृष्ठ २०

टिप्पणी १. वेदों के अनुसार अग्नि में निरंतर घृताहुति पड़नी चाहिए। तंत्रों ने मंत्रों की संख्या का दशांश आहुति की संख्या निर्धारित की है। वेद और तंत्र दोनों देवताओं का आह्वान करने के लिए हैं।

पृष्ठ २१

टिप्पणी १. ललितविस्तर, अध्याय ३, पंक्ति १४६ से (लेफमैन) :—

"बोधिसत्त्वः कुलविलोकितं विलोकयति स्म। न बोधिसत्त्वाः हीनकुलेषूपपद्यन्ते। अथ तर्हि कुलद्वये एवोपपद्यन्ते। ब्राह्मण-कुले क्षत्रियकुले च।"

टिप्पणी २. शतसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता :—

"एवं दानं दत्त्वा क्षत्रियमहाशालकुलेषूप-पद्यते। एवं दानं दत्त्वा ब्राह्मणमहाशाल-कुलेषूपपद्यते।" (खुशीलाल शास्त्री द्वारा अपने 'बुद्धास्तिकता-विचार' में उद्धृत)। (शतसाहस्त्रिका का, यह अंश अभी मुद्रित नहीं हुआ है)।

पृष्ठ २२

टिप्पणी १. शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अध्याय १०, पृष्ठ १४६० :—

"न जातु नीचकुलेषूपपद्यते । इदं बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य मानस्तम्भनिर्घातनपरिकर्म्म ।"

वही, अध्याय १०, पृष्ठ १४७१ :—

"बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महाकुलेषु प्रत्याजायते।···क्षत्रियमहाशालकुलेषु वा ब्राह्मणमहाशालकुलेषु वा प्रत्याजायते । यतो गोत्रात् पौर्वका बोधिसत्त्वा अभूवन् । तत्र गोत्रे प्रत्याजायते ।"

टिप्पणी २. रामायण, बालकांड, १४-१२:—

"ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते ।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणश्चैव भुञ्जते ॥"

पृष्ठ २६

टिप्पणी १. ललितविस्तर, अध्याय २५ (अंत में); मिलाओ पाठांतर, लेफमैन के संस्करण में—

"क्व भगवान्धर्मचक्रं प्रवर्त्तयिष्यसीति··· वाराणस्यामृषिपतने मृगदावे ।"

"पौराण ऋषीणामिहालयवरा वाराणसी

नाम वरा । देवनागाभिष्टुतो महीतलो धर्मोभिनिम्न: सदा । ”

पृष्ठ ३०

टिप्पणी १. वैदिक मंत्र (प्रख्यात मंत्र):—

“ मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि । ”—
(श्रीधर-कृत भगवद्गीता की टीका में उद्धृत, १८-३)

“ अहिंसा परमो धर्म्मः ”—महाभारत : आदिपर्व, ११-१३ ; अनुशासनपर्व, ११५-१, ११५-२५, ११६-३८ ; अश्वमेधपर्व, ४३-२१ ।

पृष्ठ ३१

टिप्पणी १. वैदिक मंत्र :—

“ सेतूंस्तर दुस्तरान् । अक्रोधेन क्रोधम् ॥ ”
(सामवेद, १-६-१-९) ।

पाली सूत्र :—

“ अक्कोधेन जिने कोधं । ”
(धम्मपद, १७-३) ।

[संस्कृत—अक्रोधेन जयेत् क्रोधम् ।]

पुन:—

“ नहि वेरेण वेराणि सम्मतीध कुदाचनं ।

[पृष्ठ ३१ (क्रमागत)]

अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनातनो॥"

(धम्मपद, १-५)

[संस्कृत—न हि वैरेण शाम्यन्तीह कदाचन। अवैरेण च शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः ॥]

टिप्पणी २. बौद्ध सुत्त, पृष्ठ ९१ :—

"स्त्रियों से संभाषण मत करो, यदि वे तुमसे भाषण करें तो अत्यंत सावधान रहो।"

यहाँ एक बात लक्ष्य करने की यह है कि बुद्ध ने सदाचार का जो उपदेश दिया है वह तत्कालीन तक्षणकला में जाकर बहुत ही परिवर्तित रूप में दिखाई पड़ता है। उस समय सामान्यतः यह विश्वास किया जाता था कि शुद्ध मनवाले वज्रिन् (वज्र के देवता) अश्लील वस्तुओं के निकट आने में संकोच (घृणा) करते हैं। इसलिए बिजली गिरने (वज्रपात) से बचाने के लिए विशाल मंदिरों के चारों ओर अत्यंत अश्लील मूर्तियाँ बना दी जाया करती थीं। यही उस समय की विद्युत्-निवा-

एक विधि (lightning-conductor) थी, क्योंकि तब तक विद्युत्-निवारक यंत्र अज्ञात था। बौद्ध-धर्म में इसके स्थान पर पत्थर के एक विशाल मंत्रित चक्र (वज्रासन) के बनाने का विधान है, जिसमें वज्र उतर आया करे।

पृष्ठ ३२

टिप्पणी १. "बौद्ध-धर्म, ईसाई-धर्म की भाँति, परलोक पर अधिक ध्यान देता है। एशिया के निवासियों द्वारा इसकी शीघ्र स्वीकृति के कुछ प्रधान कारण थे—इसका अध्यात्म-वाद, भावी जीवन की पुष्टि और प्राणी के सांसारिक जीवन के एकांत महत्त्व की अस्वीकृति। अतः किसी देश के बौद्ध-धर्म का सच्चा स्वरूप उस देश की मृतक-क्रिया से प्रकट होता है।" (Saunders : Buddhism and Buddhists in Southern Asia, पृष्ठ ४४)।

"बौद्ध-धर्म में यह विश्वास एक प्रधान बात है कि मरने के पश्चात् मृतात्मा अपने

[पृष्ठ ३२ (क्रमागत)]

सुकृत्यों और कुकृत्यों का फल भोगने के लिए इस पृथ्वी पर इधर-उधर घूमती रहती है। साथ ही प्रेत और प्रेतलोक के विषय में विचार करनेवाली एक पुस्तक पेतवत्थु, पाली-धर्मग्रंथों के ही अंतर्गत है।" (Law : Buddhist Conception of Spirits, पृष्ठ १)।

बौद्धों का आत्मा के जीवित रहने में विश्वास करना, शुद्ध वैदिक भावना है। "मृत पितरों की स्थिति में विश्वास करना और उनको पिंडदान देना हिंदू-गार्हस्थ्य-धर्म का एक अंग है। इस दृढ़ विश्वास की पुष्टि के लिए बौद्ध-धर्म पेतलोक अर्थात् प्रेतलोक से भी अभिज्ञ है।" (Sir Charles Eliot : Hinduism and Buddhism, भाग १, पृष्ठ ३३८)।

टिप्पणी २. अश्वघोष-कृत बुद्धचरित, १२-१०२ से :—

"स्वस्थप्रसन्नमनसः समाधिरुपपद्यते ।
समाधियुक्तचित्तस्य ध्यानयोगः प्रवर्त्तते ॥

ध्यानप्रवर्तनाद्धर्माः प्राप्यन्ते यैरवाप्यते।
दुर्लभं शान्तमजरं परं तदमृतं पदम् ॥"

तात्पर्य—जब मन स्वस्थ रहता है केवल तभी मनुष्य योग (ध्यान) के द्वारा अमरत्व का मार्ग ढूँढ़ता है।

पृष्ठ ३२

टिप्पणी १. जातक-षष्ठी पूजा :—

"ध्यानासीनो महायोगी
दीर्घायुर्मुण्डमुण्डितः ।"

वायुपुराण, १८-२८ :—

"बुद्धरूपं समास्थाय
योगमार्गे व्यवस्थितः।"

टिप्पणी २. शंकराचार्य-कृत दशावतार-स्तोत्र, पद्य ९, पंक्ति २ :—

"कलौ योगिनां चक्रवर्ती।"

टिप्पणी ४. भगवद्गीता, ४-५ :—

"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥"

कतिपय उद्धरण इस बात का साक्ष्य देते हैं कि बुद्ध ने समाधि लगाने की

असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी। उनके संनिकट घोर नाद के साथ वज्रपात होने पर भी उन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। शारीरिक क्लेशों को जीतने के लिए वे अपने को इतने प्रगाढ़ ध्यान में लीन कर दिया करते थे कि उन्हें उनकी अनुभूति ही नहीं होती थी। (महापरिनिर्वाण सूत्र, अध्याय ४, § ४१ और अध्याय २, § ३२)।

पृष्ठ ३४

टिप्पणी २. अमरकोश, १-१-१-९ :—

"सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः **
अद्वयवादी विनायकः।"

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अमरकोश के रचयिता बौद्ध थे, इसलिए यह बौद्ध-ग्रंथ माना जाता है।

वैजयंती, १-१-३४ :—

"शाक्यो मुनिरद्वयवाद्यपि।"

हलायुध, १-८५ :—

"* * बुद्धः शाक्यस्तथागतः सुगतः।

मारजिद्द्वयवादी समन्तभद्रः । ”

टिप्पणी ३. तैत्तिरीयोपनिषद्, २-१ :—

“ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । ”

पृष्ठ ३५

टिप्पणी १. अष्टसाहस्रिका का प्रारंभ इस प्रकार है :—

“ॐ नमो भगवत्यै आर्य्यप्रज्ञापारमितायै ।”

“निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते॥”

“बहुरूपा त्वमेवैका नानानामभिरीड्यसे ।”

अंतिम वचन (अर्थात् पद्य ९) उपनिषदों का सिद्धांत है कि माया (अर्थात् स्वप्नवत् व्यापार) के द्वारा एक अनेक रूप और नाम धारण करके बहुत हो जाता है। मिलाओ “प्रत्येक बुद्ध अपने शिष्यों को एकत्र करके यह उपदेश करता है कि तू (प्रज्ञा) किस प्रकार एक से अनेक रूपों और नामोंवाला हो जाता है ” (अष्टसाहस्रिका, हॉगसन द्वारा उद्धृत, उनके निबंधों का पृष्ठ ८६)

टिप्पणी २. ज्ञानसंकलिनी तंत्र, पद्य ५४ :—

“न ध्यानं ध्यानमित्याहुर्ध्यानं शून्यगतं मनः ।”

तात्पर्य—सच्चा ध्यान वही है जिसमें मन वस्तुओं की शून्यता (माया) में लीन हो जाता है।

पृष्ठ ३६

टिप्पणी १. यदि निर्वाण पद का अर्थ है नष्ट होना तो इसका अर्थ अभिलाषाओं का नाश होना ही होगा, आत्मा का विनाश नहीं (देखो योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्रकरण)। " संस्कृत शब्द निर्वाण के अर्थों में से एक अर्थ है नाश होना। अतएव बहुत से विद्वान लेखक इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि निर्वाण प्राप्त करने का अर्थ है नष्ट होना एवं शून्य में लीन हो जाना। पर बुद्ध की शिक्षा के अनुसार इस शब्द का यह अर्थ कदापि ठीक नहीं हो सकता। ' एक बार बुद्ध से किसी मनुष्य ने पूछा :—निर्वाण क्या है ? बुद्ध ने उत्तर दिया कि समस्त वासनाओं का विनाश ही निर्वाण है।' " (From the Kanjur,—or Bkah-Hgyur,—

[पृष्ठ ३६ (क्रमागत)]

रेवरेंड मिस्टर वेवर द्वारा अनुवादित और लार्ड डनमोर द्वारा 'The Pamirs' के भाग १, पृष्ठ १२२-१२४ में उद्धृत)।

जो लोग बुद्ध के अग्नि-संबंधी उपदेश (महावर्ग, १-२१) से निर्वाण के अर्थ की व्युत्पत्ति करते हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि उक्त धर्मोदेश मौलिक नहीं है, वरन् प्राचीन शिक्षाओं के आधारभूत है और इसीलिए पूर्व-स्वीकृत रीति से उसकी व्याख्या होनी चाहिए। मिलाओ, योगवासिष्ठ : "जिसकी आत्मा शीतल है उसके लिए संसार शीतल है और जिसकी आत्मा आंतरिक तृष्णा से प्रतप्त है उसके लिए संसार दावानल की भाँति दाहक है।"—

"अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत्। अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत्॥"—

(विद्यारण्य स्वामी द्वारा जीवन्मुक्ति

[पृष्ठ ३६ (क्रमागत)]

विवेक, अध्याय ४ में उद्धृत)।

" निर्वाण का अर्थ है वासना से पूर्ण मुक्ति की अवस्था।"

" जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अज्ञान के कारण अपने जगत् और दुःख का निर्माण स्वयं कर लेता है उसी प्रकार वह ज्ञान के द्वारा स्वयं संसार-वैराग्य, क्लेशों का अंत, निर्वाण भी प्राप्त करता है।" (Paul Dahlke : 'Buddhists Essays.,' शीलाचार द्वारा अनुवादित, पृष्ठ ८५ और ८८)। " निर्वाण का अर्थ है 'अनाकुल,' 'पूर्ण शांत।'" (देखो Fytche : 'Burma,' भाग २, पृष्ठ १७३, पादटिप्पणी)। इस अवस्था की तुलना प्रशांत एवं निश्चल ज्योति से की गई है। जो आत्मा वासना के वशीभूत होने के कारण जन्म-जन्मांतर में भ्रमण करती है वह अंत में वासना से मुक्त होकर शांत और स्वाधीन हो जाती है।

[पृष्ठ ३६ (क्रमागत)]

इति वुत्तक में बुद्ध कहते हैं:—"जो लोग सुबुद्धि, दूरदर्शी और विचारशील हैं, जो नियमों पर उचित विचार करते हैं और विषय-सुखों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते, निर्वाण की प्राप्ति पर उन लोगों का कुछ भी ह्रास नहीं होता (निक्सन द्वारा अपने 'Knowledge of the Buddha' में उद्धृत)।

"स्वयं बुद्ध और उनके तत्कालीन शिष्य निर्वाण का अर्थ सत्ता की पूर्णता करते थे, विराम नहीं। अब यह बात अधिकांश में निश्चित हो चुकी है। (स्मिथ : Mohammed and Mohammedanism, पृष्ठ ४, पादटिप्पणी, परिशोधित संस्करण)। बुद्ध ने स्वयं कहा है:—"भाइयो! सचमुच मैं विनाश (निर्वाण) की शिक्षा देता हूँ अर्थात् लिप्सा, क्रोध, कपट, अनेक

अवगुणों और चिंता की विकृतावस्था का विनाश (मज्झिमनिकाय और अंगुत्तरनिकाय, २ और ३)।

इसलिए निर्वाण के तात्पर्य में बुद्ध और हिंदुओं के बीच कोई भेद नहीं है।

पृष्ठ ३७

टिप्पणी १. धम्मपद, ११-९ (पाली वचन)

" गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहासि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखतं।
विसङ्खारगतं चित्तं तन्हानं खयमज्जगा। "

[संस्कृत—गृहकारक दृष्टोऽसि पुनः गेहं न कर्त्तासि। सर्वास्ते पार्श्वका भग्ना गृहकूटं विसंस्कृतम्। विसंस्कारगतं चित्तं तृष्णानां क्षयमभ्यगात्॥]

तात्पर्य—आत्मा शरीर का निर्माण करती है। (स्वप्न के दृष्टांत से यह बात स्पष्ट हो जायगी। स्वप्न में वास्तविक शरीर निःसत्त्व पड़ा रहता है और वैसा ही एक दूसरा शरीर स्वप्न में इधर-उधर चक्कर लगाता है एवं स्वप्न-जगत् में

[पृष्ठ ३७ (क्रमागत)]

क्लेश पाता है। यह स्वप्न-शरीर निश्चय ही आत्मा की सृष्टि है। यह है तो आभ्यंतर वस्तु, किंतु इसपर वाह्य का आरोप हो जाता है। ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य में वास्तविक जागर्ति होती है तो वह इस स्थूल-शरीर को आत्मा की सृष्टि समझने लगता है)। जब मनुष्य को इस बात का सम्यक् ज्ञान हो जाता है तो वह मरणशील योनियों में बारंबार जन्म लेने से मुक्त हो जाता है। संसार को मायिक समझकर मनुष्य पूर्ण शांति एवं अवासना की अवस्था को प्राप्त होता है और विश्वात्मा ब्रह्म में मिलकर एक हो जाता है। जिसे बुद्ध अपना मत बतलाते हैं वह शुद्ध वैदिक शिक्षा है। बुद्ध 'इति वुत्तक' में अन्यत्र कहते हैं:—"जब वह (पूर्ण भिक्षु) उस पार पहुँचता है तो ब्रह्म के नीरस प्रदेश में उपस्थित होता है" [निक्सन

[पृष्ठ ३७ (क्रमागत)]

द्वारा अपने 'Knowledge of the Buddha,' में उद्धृत, महाबोधि जनरल, भाग ३१, पृष्ठ ३४०]।

टिप्पणी ३. तैत्तिरीयोपनिषद्, २-१ :—

" ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम्।"

श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-१५ :—

" तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

हठयोग-प्रदीपिका, ४-३५,३६, ३७ :—

" एकैव शाम्भवीमुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव।"

" अन्तर्लक्ष्यं वहिर्दृष्टिः " ❀ ❀

" सा लब्धा प्रसादाद्गुरोः।"

(टीकाकार स्वात्माराम स्वामी लिखते हैं कि इस प्रकार कालक्रम से मनुष्य के समक्ष शंभु की मूर्ति प्रकट हो जाती है—बाइबिल का अतीत-काल—इसी से इसका नाम शांभवी मुद्रा है)।

घेरंडसंहिता, अध्याय ३, § ५९-६२ :—

" नेत्राञ्जनं समालोक्य
आत्मारामं निरीक्षयेत्।

[पृष्ठ ३७ (क्रमागत)]

" सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥
स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम् ।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शाम्भवीम्
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरः ।
शाम्भवीं यो विजानीयात्
स च ब्रह्म न चान्यथा ॥ "

हिंदी अनुवाद—दोनों भौंहों के बीचोबीच आँख गड़ाकर आत्माराम को देखे । यह शांभवी मुद्रा कहलाती है, जो सभी तंत्रों में गोप्य है । जो इस शांभवी मुद्रा को जान जाता है वही अपने को स्रष्टा (ब्रह्म), पालक (विष्णु) और संहारक (रुद्र) समझने लगता है । महादेव ने कहा है कि जो शांभवी मुद्रा को जानता है वह ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ नहीं । यह सत्य है, सत्य है, सत्य है । आगे पृष्ठ ९७ की टिप्पणी २ में उद्धृत वैदिक मंत्रों की इसके साथ तुलना कीजिए अर्थात् शतपथब्राह्मण, १४-७-२-१७, अथवा बृहदारण्यकोपनिषद्, ४-४-१३ ।

(यह सब कहने का केवल यही तात्पर्य है कि यह उसका अंतिम जन्म है और मरणानंतर वह आदि-कारण में लीन हो जायगा। उचित निरीक्षण के विना ऐसा योग करने का प्रयत्न न करना चाहिए, क्योंकि उक्त स्थान पर दृष्टि को गड़ाने का प्रयास करने से आँख की ज्योति के नष्ट हो जाने की पूर्ण आशंका है)।

अस्सिसी के सेंट फ्रैंसिस के 'कलंक' और उसके ईसा के दिव्य दर्शन के चित्र के लिए देखो Bettany's World's Religions। यहाँ यह एक ध्यान देने की बात है कि चित्र में प्रदर्शित ईसा की स्तुति की स्वाभाविक मुद्रा योगियों की शांभवी मुद्रा से पूर्णतया मिलती है।

पृष्ठ ३८

टिप्पणी १. ईशावास्योपनिषद्, २ :—

" विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा
विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ "

[पृष्ठ ३८ (क्रमागत)]

तात्पर्य—जो कर्म और ज्ञान दोनों का अभ्यास करता है वह प्रथम अपने को कर्म द्वारा मृत्युलोक से ऊपर उठाता है और तत्पश्चात् अपने ज्ञान के द्वारा अमरलोक में वास करता है तथा वहाँ पूर्णता के लिए और उन्नति करता है। (यह कर्म वैदिक अग्निहोत्र है। इसका निर्देश श्रीशंकराचार्य ने अपनी उपनिषद् की टीका में किया है। ज्ञान है आत्मज्ञान। तीर्त्वा में 'त्व' प्रत्यय का अर्थ है अनुक्रम, न कि युगपद्भाव। पहले एक और तत्पश्चात् द्वितीय)। मिलाओ "कर्म के साथ-साथ शास्त्रों का अध्ययन करना अत्युत्तम है। यदि कर्म के विना शास्त्राध्ययन किया जायगा तो अंत में निष्फल होगा।" (Pirque Aboth, २-२)।

टिप्पणी ३. ऋग्वेद, १०-१२९-४—

"कामस्तदग्रे समवर्त्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।"

द्वितीय अध्याय

पृष्ठ ४२

टिप्पणी १. बुद्ध के हिंदुओं का अवतार होने के मूल वचन

बुद्धस्याऽवतारत्वविधानम्

मत्स्यपुराण, ४७-२४७ :—

"कर्त्तुं धर्म्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः॥"

कल्किपुराण, २-३-२६:—

"बुद्धावतारस्त्वमसि।"

वायुपुराण, एकलिंग-माहात्म्य, १२-४३, ४४ :—

"मत्स्यः कूर्म्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥
भूमेर्भारावतराय वासुदेवो जगत्प्रभुः।
अवतारैर्दशविधैरवतीर्णो महीतले॥"

वही, १४-३९ :—

"कृतादिषु त्रिषु हरिरवतीर्य मुहुर्महीम्।
पाति रूपैर्नृसिंहाद्यैर्बुद्धः सोऽद्य कलौ स्थितः॥"

[पृष्ठ ४२ (क्रमागत)]

गरुड़पुराण, ८६-१० :—

" धर्मसंरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये ।
दैत्यराक्षसनाशार्थं मत्स्यः पूर्वं यथाऽभवत् ॥
कूर्म्मो वराहो नृहरिर्वामनो राम उर्ज्जितः ।
यथा दाशरथी रामः कृष्णो बुद्धोऽथ
कल्क्यपि ॥ "

ब्रह्मपुराण, ४-३ :—

" मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥
इत्येताः कथितास्तस्य मूर्त्तयो भूतधारिणि ।
दर्शनं प्राप्तुमिच्छूनां सोपानानि च शोभने ॥ "

वही, ११३-२७ :—

" मत्स्यः कूर्मो वराहश्च
नारसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च
बुद्धः कल्की महात्मवान् ॥ "

नृसिंहपुराण, ३६-२९ :—

" कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो
भवेन्नारायणः प्रभुः । "

[अन्य स्थल—अग्निपुराण, १६-१ ; भागवतपुराण, ६-८-१७ ; बृहन्नारदीयपुराण,

[पृष्ठ ४२ (क्रमागत)]

२-३९ ; गरुड़पुराण, १-१४९-३९, १-२०२-११ ; गर्गसंहिता, अश्वमेध-खंड, ५९-११९ और बलभद्र-खंड, १२-२५ ; वायुपुराण, १५-५१, ९-१९ (एकलिंग-माहात्म्य); शंकर-विजय, १२-८ ; गीतगोविंद (अवतारों के श्लोक में) ; अपामार्जन-स्तोत्र (" मत्स्यः कूर्मो वराहश्च " से आरंभ होनेवाला स्थल); नारद-पंचरत्न (" बुद्धो ध्यानजिताशेष-देव " से आरंभ होनेवाला स्थल) ; सुभाषित-रत्न-भांडागारम् (" यस्या-लीयत शल्कसीम्नि जलधिः " से आरंभ होनेवाला स्थल); हेमाद्रि, व्रतखंड, अध्याय १५ (" शुद्धोदनेन बुद्धोऽभूत् स्वयं पुत्रो जनार्दनः । ")] ।

तात्पर्य—ऊपर के सभी उद्धरण प्रामाण्य हिंदू-धर्मग्रंथों के हैं। ये सब इस बात की घोषणा करते हैं कि बुद्ध नारायण अर्थात् परमात्मा के नवें अवतार

[पृष्ठ ४२ (क्रमागत)]

थे और कलियुग के लिए उनका अवतार हुआ था। इस स्थान पर यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि हिंदुओं में ईश्वरावतार परम पूज्य माना जाता है और बुद्धावतार वर्तमान युग में पूजनीय है।

टिप्पणी २. भगवद्गीता, ४-७, ८ :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

तात्पर्य—जब कुसमय आता है तब दुष्ट प्रबल हो जाते हैं और नीति के मार्ग को भ्रष्ट कर देते हैं। ऐसे समय में अनीति करना अच्छा समझा जाता है। अंत में पृथ्वी पर ईश्वरावतार होता है, जो सूत्र अपने हाथ में लेता है और धर्म का चक्र पुनः चलने लगता है। (धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र)।

भागवतपुराण, १-३-२८ :—

[पृष्ठ ४२ (क्रमागत)]

"इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।"

गरुड़पुराण, १-१४९-३९ :—

"वासुदेवः पुनर्बुद्धः सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
देवादिरक्षणार्थाय अधर्महरणाय च॥"

वही, ८६-१० :—

"धर्मसंरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये।
दैत्यराक्षसनाशार्थं............
बुद्धोऽथ कल्क्यपि॥"

[अन्य स्थल—भागवतपुराण, ६-८-१७; गरुड़पुराण, २०२-११। मत्स्यपुराण, ४७-२४७ ऊपर उद्धृत किया जा चुका है]।

तात्पर्य—ऊपर प्रामाण्य हिंदू-धर्मग्रंथों से जो उद्धरण दिए गए हैं वे घोषित करते हैं कि जब दुष्ट लोग धर्म का मार्ग भ्रष्ट कर देते हैं तब नारायण अर्थात् परमात्मा पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और संसार को पुनः सन्मार्ग पर लाते हैं। बुद्ध इसी प्रकार के एक अवतार थे और उनका भी वही कार्य था।

टिप्पणी ३. ललितविस्तर, अध्याय ७। "तेन च समयेन हिमवतः" से आरंभ होनेवाले स्थल में बुद्ध की अलौकिक उत्पत्ति का चित्र खींचा गया है। यह वर्णन अन्य अवतारों की उत्पत्ति से मिलता है (पृष्ठ १०१, लेफमैनवाला संस्करण)।

"वज्रदृढ अभेद्य नारायण आत्मभावो गुरुवीर्यबलोपेतः सोऽकम्प्यः सर्वसत्त्वोत्तमः" ("चत्वारश्च महाराजानो अङकवर्ती" से आरंभ होनेवाला स्थल—पृष्ठ २०२, लेफमैनवाला संस्करण)।

पृष्ठ ४३

योगवासिष्ठ, वैराग्य-प्रकरण, २६-३९ :—

"परोपकारकारिण्या पराचिपरितप्तया।
बुद्ध एव सुखी मन्ये स्वात्मशीतलया धिया।"
[टीका—"बुद्धः प्रबुद्धतत्त्वपुरुषः।"—भिक्षुकृत टीका।]

महाभारत, शांतिपर्व, २८५-३२ :—

"एतद्बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः
किमन्यद्बुद्धलक्षणम्।"

[पृष्ठ ४३ (क्रमागत)]

महापरिनिर्वाण सूत्र, अध्याय ५ :—

" पूर्वबुद्धों के उत्तराधिकारी के संमानार्थ " (र्‌हीस डैविड्स का बौद्ध सुत्तों का अनुवाद, पृष्ठ ८६) ।

ललितविस्तर, अध्याय १२ (पृष्ठ १५६, लेफमैन का संस्करण) :—

" एष धरणिमण्डले पूर्वबुद्धासनस्थः***
प्राप्यते बोधिमग्र्याम् । "

लंकावतार सूत्र :—इन श्लोकों से आरंभ होनेवाला स्थल—

" रावणोऽहं दशग्रीवो राक्षसेन्द्र इहागतः ।
अनुगृह्णाहि मे लङ्कां ये चास्मि पुरवासिनः ॥
पूर्वैरपि च सम्बुद्धैः प्रत्यात्मगतिगोचरम् ।
शिखरे रत्नखचिते पुरमध्ये प्रकाशितम् ॥"

वहाँ एक बुद्ध और साथ ही पूर्वबुद्धों का भी उल्लेख मिलता है ।

[तारातंत्र भी वसिष्ठ के समय में एक बुद्ध का उल्लेख करता है ।]

पूर्वबुद्धों की सूची, प्रिंसेप के

[पृष्ठ ४३ (क्रमागत)]

'Antiquities' के भाग २ के 'Useful Tables' में :—

(१) विपाश्य । (५) कनकमुनि ।
(२) शिखी । (६) कश्यप, और
(३) विश्वभू । (७) शाक्यसिंह
(४) कारकूट चंड (वर्तमान बुद्ध)

तात्पर्य—ऊपर हिंदुओं और बौद्धों दोनों के धर्मग्रंथों से उद्धृत किए गए उद्धरण सिद्ध करते हैं कि अनेक बुद्धों में से बौद्धों के प्रधान देवता बुद्ध, हिंदुओं के एक अवतार एवं हिंदुओं के भी परम पूजनीय हैं ।

टिप्पणी १. कुछ लोगों के मतानुसार कपिलमुनि के आश्रम कपिलवस्तु में जन्म लेने के कारण बुद्ध वस्तुतः कपिलमुनि के अनुयायी थे और उनका मत कपिलमुनि के सांख्यदर्शन से ही आविर्भूत हुआ था । (मिलाओ राजेंद्रलाल मित्र की 'Yoga Aphorisms of Patanjali' की प्रस्ता-

वना, पृष्ठ ५। मिलाओ Dr. Hermann Jacobi : Buddhistischen Philosophie zu Shankhya-Yoga und die Bedeutung der Nidanas, Leipsic ; और कोलब्रुक के निबंध, १, पृष्ठ ९३ भी)।

पृष्ठ ४४

टिप्पणी १. बुद्ध की मूर्तिपूजा के मूलवचन

बुद्धस्य मूर्तिपूजाविधानम्

लिंगपुराण, २-४८-२८ से ३३ :—

"मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च ॥
तेषामपि च गायत्रीं कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत्॥"

अग्निपुराण, ४९-८ :—

"शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मास्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥"

भविष्यपुराण, २-७३ :—

" सुवर्णमयीं भगवतः श्रीबुद्धदेवस्य प्रतिमां स्थापयित्वाऽर्चयित्वा च ब्राह्मणाय दद्यात्। "

[पृष्ठ ४४ (क्रमागत)]

हेमाद्रि, चतुर्वर्ग चिंतामणि, व्रतखंड, अध्याय १ (पृष्ठ ११९, एशियाटिक सोसाइटीवाला संस्करण) :—

"काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धे संसक्तचीवरः।
पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी
बुद्धः प्रकीर्त्तितः ॥"

वही, अध्याय १५ (पृष्ठ १०३८, एशियाटिक सोसाइटीवाला संस्करण):—

"बुद्धस्तु द्विभुजः कार्यो
ध्यानस्तिमितलोचनः।"

[अन्य स्थल—भविष्यपुराण, २-७३ ("दशावतारानभ्यर्चेत् पुष्पधूपविलपनैः" से आरंभ होनेवाला स्थल); हेमाद्रि, व्रतखंड, अध्याय १५ ("स्थापयेत्तत्र सौवर्णं बुद्धं कृत्वा विचक्षणः," "एवमेव श्रावणे मासि" से आरंभ होनेवाले स्थल में)]।

तात्पर्य—हिंदू-धर्मग्रंथों से उद्धृत किए गए ऊपर के उद्धरण हिंदुओं को

[पृष्ठ ४८ (क्रमागत)]

बुद्ध की मूर्ति बनाने और उसकी पूजा करने का आदेश करते हैं। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि बुद्ध की वे सभी प्रतिमाएँ, जिनकी पूजा बौद्ध करते हैं, हिंदू-धर्मग्रंथों में आदिष्ट मूर्तियों से पूर्ण-तया मिलती हैं।

टिप्पणी २. सूतसंहिता, ४-३-२१ :—

"बुद्धार्हतादिमार्गस्थे देवताप्रतिमासु च।
देवताबुद्धिमात्रं यत्सोऽपि यज्ञः प्रकीर्त्तितः॥"

सूतगीता, ८·४५ :—

" तन्त्रोक्तेन प्रकारेण देवता या प्रतिष्ठिता।
साऽपि वन्द्या सुसेव्या च
पूजनीया च वैदिकैः॥ "

तात्पर्य—देवताओं को मनुष्यों से श्रेष्ठ मानने का दृढ़ विश्वास भी यज्ञ के अर्थात् वेद-संमत पूजन के अंतर्गत है। चाहे वह प्रतिमा का रूप धारण करे या न करे। तंत्रोक्त प्रकार से स्थापित सभी मूर्तियाँ वैदिकों के लिए भी पूजनीय हैं।

[पृष्ठ ४४ (क्रमागत)]

टिप्पणी ३. बुद्ध के शालग्राम—प्रतीक-पूजन के मूलवचन

बुद्धस्य शालग्रामविधानम्

ब्रह्मांडपुराण :—

"अणुगह्वरसंयुक्तं चक्रहीनं यथा भवेत्।
निविडो बुद्धसंज्ञः स्याद्ददाति परमं पदम्॥"

तात्पर्य—शालग्राम अर्थात् गोल पत्थर की मूर्तियों में विभिन्न प्रकार के चिह्न और छिद्र होते हैं। प्रत्येक प्रस्तर-खंड अपने विशेष चिह्नों के अनुसार विष्णु का विशिष्ट रूप कहा जाता है; यथा—श्रीधर, लक्ष्मीनारायण, पद्मनाभ, रघुनाथ, रण-रघु आदि। जिस शालग्राम में एक छोटा छेद होता है, पर वृत्ताकार चिह्न नहीं होता एवं जिसके रवे बहुत घने होते हैं, वह बुद्ध का प्रतीक कहलाता है। इसका पूजन बुद्ध का ही पूजन है; दोनों प्रकार से एक ही फल प्राप्त होता है। ये सभी बातें हिंदुओं के लिए उन्हीं के धर्मग्रंथों में कही गई हैं।

[सूचना—उपर्युक्त श्लोक प्राणतोषिणी तंत्र के पाँचवें खंड के चतुर्थ अध्याय में मिलता है। वहाँ यह ब्रह्मांडपुराण से उद्धृत किया गया है।]

पृष्ठ ४५

टिप्पणी १. हिंदुओं को बुद्ध का तिलक लगाने का आदेश देनेवाले मूलवचन

बुद्धस्य पुण्ड्रधारणविधानम्

सूतसंहिता, सूतगीता, ८-३४ :—

" अश्वत्थपत्रसदृशं हरिचन्दनेन
मध्ये ललाटमतिशोभनमादरेण।
बुद्धागमे मुनिवरा यदि संस्कृतश्चे-
न्मृद्वारिणा सततमेव तु धारयेच्च ॥ "

तात्पर्य—यदि हिंदू-साधु (मुनि) बुद्ध के धर्म (बुद्धागम) में दीक्षित (संस्कृत) हों तो उन्हें अपने संप्रदाय का द्योतन करने के लिए मस्तक पर एक प्रकार का तिलक लगाना चाहिए जो पीपल अर्थात् बोधितरु के पत्ते (अश्वत्थ-पत्र) के आकार का हो और पीले चंदन (हरि-

[पृष्ठ ४५ (क्रमागत)]

चंदन) की लकड़ी को घिसकर लगाया गया हो।

यह और इसके पूर्व के उद्धरण केवल हिंदू-प्रतिमा-पूजकों के लिए हैं। केवल वे ही लोग ऐसा पूजन करते हैं। पूजकों के विभिन्न संप्रदायों का द्योतन करने के लिए अनेक प्रकार के तिलक लगाए जाते हैं।

निम्नलिखित उद्धरणों के संबंध में यह बता देना उचित होगा कि केवल जावा की ही मूर्तियों में नहीं, वरन् तिब्बत, जापान, लंका और चीन की प्रतिमाओं में भी बुद्ध के ललाट पर तिलक देखा जाता है। (देखो Karl With : Java, चित्र-फलक १० से १२; H. G. Wells : A Short History of the World, पृष्ठ १५१ और १५२ ; Anesaki : Buddhist Art, चित्र-फलक १२; Woodward : Buddhist Ceylon, Frontispiece ; Ashton : Chinese

[पृष्ठ ४५ (क्रमागत)]

Scupture, चित्र-फलक ५३, मैत्रेय के लोक में बुद्ध)।

जावा की प्रतिमाओं में जो यज्ञोपवीत का चिह्न है (कार्लेविथ : चित्र-फलक ८ से ११) उसका समर्थन सौभाग्य-विजय नामक एक आप्त जैन ने किया है। वे कहते हैं कि जनोइ (यज्ञोपवीत) बुद्ध-प्रतिमा का एक विज्ञापक लक्षण है। (देखो आगे, पृष्ठ ५२ की पाद-टिप्पणी)।

टिप्पणी २. बुद्ध के प्रातःस्मरण के मूलवचन

<u>बुद्धस्य प्रातःस्मरणविधानम्</u>

गरुड़पुराण, २-३१-३५ :—

"मत्स्यं कूर्म्मं च वराहं नारसिंहं च वामनम्।
रामं रामञ्च कृष्णञ्च बुद्धञ्चैव सकल्किनम्॥
एतानि दशनामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधैः॥"

भागवतपुराण, १-३-२९ :—

"जन्म गुह्यं भगवतो य एतत् प्रयतो नरः।
सायं प्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते॥"

तात्पर्य—हिंदू-धर्मग्रंथ सभी हिंदुओं

को प्रातःकाल उठने पर सर्वप्रथम बुद्ध के नाम और अवतार का स्मरण करने का आदेश देते हैं। इस कृत्य के करने से अत्यधिक फल मिलता है।

टिप्पणी ३. बुद्ध के ध्यानविधान के मूलवचन

बुद्धस्य ध्यानविधानम्

अग्निपुराण, ४९-८:—

"शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः॥"

मेरुतंत्र, अध्याय ३६ (अवतार-प्रकरण):—

"पद्मे पद्मासनस्थं तमूर्ध्वोन्न्यस्तकरद्वयम्।
गौरं मुण्डितसर्वाङ्गं ध्यानस्तिमितलोचनम्॥
पुस्तकासक्तहस्तैश्च नानाशिष्यैश्च शोभितम्।
इन्द्रादिलोकपालैश्च नतं त्वेनाम्बरावृतम्॥"

पृष्ठ ४६

श्रीशंकराचार्य (दशावतार के श्लोक):—

"धराबद्धपद्मासनस्थाङ्गयष्टि-
नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्ती॥"

तात्पर्य—केवल हिंदुओं के धर्मग्रंथ

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

ही नहीं, वरन् जिन श्रीशंकराचार्य को कुछ लोग बौद्ध-धर्म का विरोधी कहते हैं वे भी हिंदुओं को बुद्ध के पूजन की विधि का आदेश करते हैं।

टिप्पणी १. बुद्ध की व्रत-पूजा के मूलवचन

बुद्धस्य व्रतपूजाविधानम्

अग्निपुराण, १६-१:—

"वक्ष्ये बुद्धावतारञ्च पठतः श्रृण्वतोऽर्थदम्।"

गरुड़पुराण, १-२-३२ :—

" संपूज्यश्च व्रतादिना । "

वही १-१४९-३९ :—

" वासुदेवः पुनर्बुद्धः ❀ ❀ ❀

श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः । "

वाराहपुराण, २११-६५ से ६६ :—

" पूजयेत् कमलैर्देवि मद्भक्तः संयतेन्द्रियः।
मत्स्यं कूर्म्मं वराहञ्च नरसिंहं च वामनम्॥
रामं रामञ्च कृष्णं च बुद्धं चैव च कल्किनम्।
एवं दशवतारांश्च पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥ "

वही, ४८-२२ :—

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

"रूपकामो यजेत् बुद्धं
शत्रुघाताय कल्किनम् ।"

वही, ४९ ("श्रावणे मासि" से आरंभ होकर संपूर्ण अध्याय) :—

"श्रावणे मासि शुक्लायामित्यारभ्य अध्यायसमाप्तिपर्य्यन्तं बुद्धद्वादशीव्रतकथा ।"

भविष्यपुराण, २-७३ :—

"एवं श्रावणशुक्लद्वादश्यां बुद्धाय नमः पादयोः । श्रीधराय नमः कट्याम् । पद्मोद्भवाय नमः उदरे ॥ सम्वत्सराय नमः उरसि । सुग्रीवाय नमः कण्ठे । विश्वबाहवे नमः भुजयोः । शङ्खाय नमः शङ्खे । चक्राय नमः चक्रे ॥ एभिर्मन्त्रैः सम्पूज्य कलशे सुवर्णमयीं भगवतः श्रीबुद्धदेवस्य प्रतिमां स्थापयित्वा अर्चयित्वा च ब्राह्मणाय दद्यात् ।"

वही (.भविष्यपुराण, २-७३) :—

"दशावतारानभ्यर्चयेत् पुष्पधूपविलेपनैः ।

* * *

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

मत्स्यं कूर्म्मं वराहं च नारसिंहं त्रिविक्रमम्।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं च कल्किनं तथा ॥

* * *

अत्र हैमीर्महार्हाश्च दशमूर्तीः सुलक्षणाः।
गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैरर्चयेद्विधिपूर्वकम् ॥ "

हेमाद्रि, चतुर्वर्ग-चिंतामणि, व्रतखंड, अध्याय १५ :—

"एवमभ्यर्च्य मेधावी तस्याग्रे पूर्ववद्घटम्।
स्थापयेत्तत्र सौवर्णं बुद्धं कृत्वा विचक्षणः।
तमप्येवं तु सम्पूज्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥"

निर्णयसिंधु, अध्याय २ :—

" पौषशुक्लस्य अष्टम्यां कुर्य्यात् बुद्धस्य पूजनम्।"

[अन्य स्थल—व्रतराज (अनन्त व्रतवाला अध्याय, आवरण-पूजा का पाँचवा खंड) ; प्रतिष्ठा-मयूख ("बुद्धाय नमो बुद्धौ") ; और जातक-षष्ठी-पूजा में (" स पातु जातकं नित्यं बुद्ध-रूपी जनार्दनः। ")]

तात्पर्य—हिंदू-धर्मग्रंथ सभी हिंदुओं को

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

बुद्ध की व्रत-पूजा विभिन्न अवसरों एवं विभिन्न प्रकारों से करने का आदेश देते हैं—केवल उन्हीं लोगों को नहीं जिन्होंने बुद्ध की पूजा अंगीकार की है।

टिप्पणी २. बुद्ध की गायत्री के विधान के मूलवचन

बुद्धस्य गायत्रीविधानम्

लिंगपुराण, २-४८-२८ से ३३ :—

" मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च।
तेषामपि च गायत्रीं कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत्॥ "

तात्पर्य—हिंदुओं को बुद्ध के पूजन का उसी प्रकार आदेश दिया गया है जिस प्रकार अन्य अवतारों के पूजन का अर्थात् बुद्ध की मूर्ति स्थापित करके और (उनकी स्तुति का) मंत्र पढ़कर वेद-विहित नियमों से उनकी पूजा करना।

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

टिप्पणी ३. बुद्ध के मंत्र-विधान के मूलवचन

बुद्धस्य मन्त्रविधानम्

मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण, अध्याय ३६ :—

" एवं ध्यात्वा यजेत् पद्मे द्वात्रिंशद्दल-सम्मिते । कर्णिकायां षडङ्गानि दले शिष्यान् यजेत् क्रमात् ॥ वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमयेच्च घृतौदनम् । तुलसी-मिश्रतोयैश्च भगवन्तं प्रतर्पयेत् । एवं बुद्धं समाराध्य भुक्तिं मुक्तिं प्रयान्ति ते ॥ "

[अन्य स्थल—भविष्यपुराण, २-७३, एक ही अध्याय में दो वार,—ऊपर उद्धृत किया जा चुका है ।]

तात्पर्य—यहाँ उस पूजा का उल्लेख किया गया है जिसके करने से प्राणी निर्वाण-पद प्राप्त कर सकता है । प्रत्येक मनुष्य को उनका मंत्र (" नमो भगवते बुद्धाय ") ९ लाख वार (या उससे चौगुनी वार जपना चाहिए) । घी में पकाए हुए चावल से उनका होम करे (मुट्ठियों

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

की गणना करके—आहुति की मुट्ठियों की संख्या जप-मंत्र की संख्या का दशमांश होना चाहिए)। अंत में तुलसीपत्र-मिश्रित जल से उनका तर्पण करे।

मेरुतंत्र हिंदू-कर्मकांड का प्रामाण्य ग्रंथ है। यह हिंदुओं और बौद्धों के लिए एक-सा आदेश करता है। कुछ लोगों के मतानुसार पके हुए चावल से बुद्धोपासक ब्राह्मण को होम न करना चाहिए। यह नीच जातियों के ही लिए है। किंतु अग्नि में घृताहुति देने का मंत्र सभी के लिए है।

यहाँ पर एक बात उल्लेखनीय है कि श्रेष्ठ वर्णों के लिए 'पके चावल की आहुति' देने का निषेध ही भूल से बुद्ध-पूजन का निषेध समझ लिया गया है। इसीलिए बुद्ध का पूजन निम्न श्रेणी के लोगों में और विदेशियों में ही शेष रह गया है। ये लोग अपने पूजनकर्म में पके

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

हुए चावलों की वलि देते हैं। यही पूजन धर्मठाकुर की पूजा के रूप में परिवर्तित हो गया है, जो वस्तुतः बुद्ध की ही पूजा है।

टिप्पणी ४. बुद्ध-नमस्कार के मूलवचन

बुद्धस्य नमस्कारविधानम्

भागवतपुराण, १०-४०-२२ :—

" नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने।"

कूर्मपुराण, ६-१५ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे।"

वही, १०-४८ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो मुक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः॥"

वायुपुराण, ३०-२२५ :—

"नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभनायात्तताय च।"

वाराहपुराण, ५५-३७ :—

"नमोऽस्तु ते बुद्ध कल्किन् वरेश।"

पद्मपुराण, क्रियाखंड, ६-१८८ :—

"तस्मै बुद्धाय ते नमः।"

वही, ११-९४ :—

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

"नमो बुद्धाय शुद्धाय सुकृपाय नमो नमः ।"

पद्मपुराण, सृष्टिखंड, ७३-९२ : —

"नमोऽस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ।"

गर्गसंहिता, विश्वजित् खंड, १३-४९ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्किने चार्तिहारिणे ।"

मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण, अध्याय ३६ :—

"नमो भगवते बुद्ध संसारार्णवतारक ।
काकोलादहं भीतः शरण्यं शरणङ्गतः ॥"

(अंतिम उद्धरण से बौद्धों के इस मंत्र की तुलना कीजिए—" बुद्धं शरणं गच्छामि ") ।

[अन्य स्थल—महाभारत, शांतिपर्व, भीष्मस्तवराज (" बुद्धरूपं समास्थाय बहुरूप परायणः । मोहयन् सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥"); तंत्रसार, विष्णु स्तोत्र (" तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ") ; देवी-भागवत, १०-५-१४ ; दशावतार-खंड, प्रशस्ति काव्यम् ("षट्-चक्रे क्रमभावनापरिगतं" से आरंभ होने-वाला स्थल) ।

[पृष्ठ ४६ (क्रमागत)]

उक्त स्थलों में से अंतिम में एक विशेष बात है, उसका उल्लेख समीचीन जान पड़ता है :—

" वे बुद्ध तुम्हारे रक्षक हों जो अपने निर्व्यलीक ध्यान में संलग्न रहते हैं और मनुष्य के ऊपर दया-भाव से प्रेरित हो-कर आँखें नहीं खोलते, क्योंकि मनुष्य के शरीर में अनेक छिद्र हैं, जिनसे वीर्य और रक्त, विष्ठा और मूत्र, अश्रु और स्वेद—बाहर निकलते हैं।

'ध्यान का बहाना करके तुम किस स्त्री की चिंता कर रहे हो ? इस स्त्री पर दृष्टि-पात करो। यह तुम्हारे प्रेम में गली जा रही है। यह बात असत्य है कि तुम कृपालु हो। कौन ऐसा पुरुष है जो तुमसे अधिक क्रूर हो।' जो बुद्ध कामदेव की सेना की अप्सराओं से इस प्रकार बारं-बार संबोधित किए जाने पर भी अपनी समाधि से विचलित नहीं होते वे ही सर्व-

श्रेष्ठ निर्व्यलीक पुरुष जीवन में तुम्हारे पथ-प्रदर्शक हों। "]।

पृष्ठ ४७

टिप्पणी १. बुद्धगया के तीर्थमाहात्म्य के मूलवचन

<u>बुद्धगयातीर्थमाहात्म्यम्</u>

बृहन्नीलतंत्रम्, पाताल ५ :—

"शृणु तानि महाप्राज्ञे पीठस्थानानि यानि तु।
सिद्धिप्रदानि साधूनां महद्भिः सेवितानि च॥

* * *

पाटला च महाबोधिर्नगतीर्थं मदन्तिके।

* * *

अक्षयं तद्भवेत् कव्यं पितृणां परमं शुभम्।
अस्मिन् स्थाने जपेद्यस्तु सिद्धिर्भवति तत्क्षणात्॥ "

स्कंधपुराण, अवंतीखंड, ६८-३० :—

" पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्र बुद्धगया स्मृता। "

वही, ७०-४ :—

" फल्गुश्च सरितां श्रेष्ठा तथैव फलदायिनी।
आदिगया बुद्धगया तथा विष्णुपदी स्मृता॥"

[पृष्ठ ४७ (क्रमागत)]

वायुपुराण, २-४९-२६ :—

"धर्म्मं धर्म्मेश्वरं नत्वा महाबोधितरुं नमेत्।"

वही, २-४९-३१ (कुछ प्रतियों में मिलता है):-

" चलद्दलाय वृक्षाय सर्वदा स्थितिहेतवे।
बोधिसत्त्वाय यज्ञाय अश्वत्थाय नमो नमः॥"

अग्निपुराण, ११५-३७ :—

" महाबोधितरुन्नत्वा धर्मवान् स्वर्गलोकभाक्। "

[अन्य स्थल—नारायण भट्ट के त्रिस्थालिसेतु नामक ग्रंथ का गया-प्रकरण (" ततो महाबोधितरोरधः " से आरंभ होनेवाला स्थल)]।

तात्पर्य—हिंदुओं को महाबोधि-स्थान (अर्थात् बुद्धगया), वहाँ की नदी (फल्गु) और वहाँ के वृक्ष (बोधि अथवा महाबोधितरु) को पूज्य मानने का आदेश दिया गया है और वहाँ की यात्रा एवं पूजा करने का विधान भी है। इसके अतिरिक्त वहाँ पहुँचने के अनंतर सर्व-प्रथम धर्मेश्वर अर्थात् बुद्ध की अर्चना

करनी चाहिए और तदनंतर वोधितरु की। यह वात स्वतः हिंदू-धर्मग्रंथों ने ही स्पष्ट शब्दों में कही है (मिलाओ वायुपुराण, ऊपर उद्धृत। उसमें 'नत्वा' और 'नमेत्' शब्द यह वतलाते हैं कि कौन कार्य प्रथम करना चाहिए और कौन तदनंतर)। धर्मेश्वर और धर्मराज शब्द बुद्ध के लिए प्रयुक्त होते हैं। (देखो Sherring's Benares, अध्याय ५, पृष्ठ ८६ ; और मिलाओ अमरकोश १-१-१-८)।

पृष्ठ ५०

टिप्पणी १. वायुपुराण, २-४९-२६ :—

"धर्म्मं धर्म्मेश्वरं नत्वा महावोधितरुं नमेत्।"

(इस पद की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है)।

टिप्पणी २. ललितविस्तर, अध्याय ७ ; "तेन च समयेन हिमवतः" से आरंभ होनेवाला वचन (लेफमैनवाला संस्करण, पृष्ठ १०१, पंक्ति १३) :—

" धार्मिको धर्म्मराजः । "

पृष्ठ ५१

वौद्धों का स्तुति-मंत्र :—

" धर्म्मं शरणं गच्छामि । "

टिप्पणी १. अमरकोश, १-१-१-८ :—

" बुद्धो धर्मराजस्तथागतः । "

वैजयंती कोश, १-१-३३ :—

" बुद्धस्तु ❀ ❀ धर्मराजस्तथागतः ।"

पृष्ठ ५२

टिप्पणी ३. विख्यात जैन-साधु सौभाग्यविजय ने सन् १६०० के लगभग बुद्धगया की यात्रा की थी। वे लिखते हैं कि बुद्धगया के विशाल मंदिर में जो बुद्ध की मूर्ति है वह हमारे जैन-मत के विपरीत जान पड़तो है । देखो उनका तीर्थमाला-स्तवन, अध्याय १०, पद्य २ से ५:—

" तिहाँथी बोधगया कोस त्रण छे रे ।
प्रतिमा बोधतणी नहिं पार रे ॥
जिनमुद्रा थी विपरीत जाणजे रे ।
कण्ठ जनोइनो आकार रे ॥ "

तात्पर्य—बुद्ध की प्रतिमा गले में 'जनोइ' अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने के कारण जैन-मूर्तियों से पृथक् की जा सकती है। बुद्ध की ऐसी मूर्तियाँ अगणित हैं। (जैन-धर्म का हिंदू-धर्म और बौद्ध-धर्म से यह विरोध इस बात को सिद्ध करता है कि पिछले दोनों धर्मों में साम्य है। इसका पुष्टीकरण बुद्ध के हिंदुओं का यज्ञोपवीत धारण करने से होता है)।

मूल लेख कलकत्ता के पी. सी. नाहर जमींदार के म्यूजियम एवं पुस्तकालय में देखा जा सकता है। उक्त पुस्तक भावनगर में प्राचीन तीर्थमाला-संग्रह के प्रथम भाग में छपी है।

पृष्ठ ५४

टिप्पणी १. भागवतपुराण, १-३-२४ से :—

"ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥
जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते॥"

[पृष्ठ ५४ (क्रमागत)]

टिप्पणी २. गरुड़पुराण, १-२-३२ :—

"ततः कलेस्तु सन्ध्यायां संमोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति।
तस्मात्सर्गादयो जाताः संपूज्यश्च व्रतादिना॥"

टिप्पणी ३. वही, २-३१-३५ :—

"मत्स्यं कूर्मं च वराहं नारसिंहं च वामनम्।
रामं रामं च कृष्णञ्च बुद्धञ्चैव सकल्किनम् ॥
एतानि दशनामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधैः॥"

टिप्पणी ४. मेदिनीकोश :—

"भगवान्ना जिने गौर्य्यां स्त्रियां पूज्ये तु वाच्यवत् ।"

हेमचंद्र, २-१३० :—

"दामोदरः शौरिसनातनौ विभुः पीताम्बरो मार्जजिनौ कुमोदकः ।"

हलायुध, १-२५ :—

"नारायणो जगन्नाथो वनमाली गदाधरः ।
सनातनो जिनः शम्भुर्विधिर्वेधा गदाग्रजः॥"

सेंट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी, (जिन शब्द में) बेन, विष्णु ।

शब्द-कल्पद्रुम, जिन शब्द में—"अर्हन् । बुद्धः । विष्णुः । "

पृष्ठ ५५

टिप्पणी १. जिष्णु : " जयनाज्जिष्णुरुच्यते। "
(महाभारत, उद्योगपर्व, ७०-१३)।

पृष्ठ ५६

टिप्पणी १. प्राचीन बुद्ध का समय द्वितीय बुद्ध से लगभग ५०० वर्ष पहले माना जाता है। प्राचीन बुद्ध शब्द पूर्वबुद्ध का अशुद्ध अनुवाद है। इसका शुद्ध अर्थ है पहले के बुद्ध। केवल एक ही पूर्वबुद्ध नहीं हुए हैं, वरन् उनकी एक परंपरा ही है [देखो Wright's Nepal, अध्याय १ ; Rhys Davids : Buddhist Suttas, पृष्ठ ८६ " प्राचीन बुद्धों के परवर्ती "]।

पटेल की Chronology, पृष्ठ ४८ :—

सर विलियम जोंस बुद्ध का समय ईसा से १०२७ वर्ष पूर्व निश्चित करते हैं, प्रोफेसर विल्सन द्वितीय बुद्ध का समय ईसा से ६३८ वर्ष पूर्व निर्धारित करते हैं—दोनों का इस विषय में क्षैपरॉथ से मतैक्य है। ईसा से १०२७ वर्ष पूर्ववाले

बुद्ध पिछले बुद्ध से साम्य के कारण
एक ही हैं।

पृष्ठ ५७

टिप्पणी १. ललितविस्तर, अध्याय २५ (लेफमैन का संस्करण, पृष्ठ ४००) :—

"शृण्वन्ति धर्मं मगधेषु सत्त्वाः।"

पृष्ठ ५८

टिप्पणी २. भागवतपुराण, १-३-२४ ; गरुड़पुराण, १-२-३२ ; वही, १-१४९-३९ :—

"सम्मोहाय सुरद्विषाम्।"

टिप्पणी ३. सूतसंहिता, ब्रह्मगीता, ४-६६ से ७० :—

"तस्मादस्ति ॐ ॐ ॐ आनन्दरूपः सम्पूर्णः।
इयमेव तु तर्काणां निष्ठाकाष्ठा सुरोत्तमाः।
बुद्धागमानां सर्वेषां तथैवार्हागमस्य च॥"

तात्पर्य—प्रतिवर्तन के द्वारा आस्तिकता नास्तिकता के रूप में परिणत हो गई। तर्क की यही अंतिम सीमा है।

टिप्पणी ४. विष्णुपुराण, ३-१८-१५ से :—

"मायामोह उवाच।
स्वर्गार्थं यदि वाञ्छा वो निर्वाणार्थमथासुराः।

तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥

ॐ ॐ ॐ

जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम् ।

रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसङ्कटे ॥

पराशर उवाच ।

एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।

ॐ ॐ ॐ

दैतेयान्मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत् ॥"

पृष्ठ ५९

टिप्पणी १. नारद-पंचरात्र, ४-३-१५६ से :—

" बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवो जगत्प्रियः ।

निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीघनो दुष्टमोहनः ॥

दैत्यवेदबहिष्कर्त्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः ।

शौद्धोदनिर्दृष्टदिष्टः सुखदः सदसत्पतिः ।

यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः॥

चतुष्कोटि पृथक्तत्त्व प्रज्ञापारमितेश्वरः ।

पाषण्डश्रुतिमार्गेण पाषण्डश्रुतिगोपकः॥"

टिप्पणी २. तंत्रसार, अध्याय ४ (विष्णुस्तोत्र का पद्य ९) :—

"पुरा सुराणामसुरान्विजेतुं

सम्भावयंश्चीवरचिह्नवेशं ।

चकार यः शास्त्रममोघकल्पं
तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ॥"

टिप्पणी ३. ललितविस्तर, अध्याय १२ (लोकमैन का संस्करण, पृष्ठ १५६) :—

"एष धरणिमण्डले पूर्वबुद्धासनस्थः
समर्थधनुर्गृहीत्वा शून्यनैरात्मबाणैः ।
क्लेश रिपुं निहत्वा दृष्टिजालञ्च भित्त्वा
शिवविरजमशोकां प्राप्स्यते बोधिमग्र्याम् ॥"

पृष्ठ ६०

टिप्पणी १. ऋग्वेदसंहिता, १०-७२-२ :—

"देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।"

वही, १०-१२९-७ :—

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।"

छांदोग्योपनिषद्, ६-२-१ :—

"तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत । "

[इसके संबंध में देखो गफ का 'Philosophy of Upanishads,' पृष्ठ १८५] ।

तैत्तिरीयोपनिषद्, २-७ :—

[पृष्ठ ६० (क्रमागत)]

"असद्वा इदमग्र आसीत्
ततो वै सदजायत ।"

शारीरिक-भाष्य, २-४-१ (वैदिक वचन के रूप में उद्धृत करता है) :—

" तदाहुः किं तदसदासीदिति ऋषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत् । "

तात्पर्य—आरंभ में यह सब असत् था। इसी असत् से सत् की उत्पत्ति हुई। [ये माया के संबंध में वैदिक वचन हैं] ।

टिप्पणी २. कूर्मपुराण, १०-४८ :—

" नमो बुद्धाय शुद्धाय ❀ ❀
मायिने वेधसे नमः । "

भागवतपुराण, १०-४०-२२ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।"

महाभारत, भीष्मस्तवराज :—

"बुद्धरूपं समास्थाय बहुरूपपरायणः ।
मोहयन् सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥"

(अंतिम श्लोक सब प्रतियों में नहीं मिलता) ।

टिप्पणी ३. देवीभागवत, चौथा स्कंध (अध्याय १०-१३):—"ततः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम्।" से आरंभ होनेवाला स्थल (स्कंध ४, अध्याय १०, पद्य ३९ और इसके आगे)।

मत्स्यपुराण, २४-३७ से ४९ ; "अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्।" से आरंभ होनेवाला प्रकरण। (अध्याय २४, पद्य ३७ और इसके आगे, विशेषतः पद्य ४७)।

पृष्ठ ६१

टिप्पणी १. शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखंड, ९-१८ से २५ :—

"तत्र विष्णुश्छली दोषी ह्यविवेकी विशेषतः।
वलिर्येन पुरा बद्धश्छलमाश्रित्य पापतः॥
तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ।
शिरोहीनौ कृतौ धौर्त्याच्छेदमार्गो विवर्जितः॥
मोहिनीरूपतोऽनेन पङ्क्तिभेदः कृतो हि वै।
देवासुरसुधापाने वेदमार्गो विगर्हितः॥
रामो भूत्वा हता नारी वाली विध्वंसितो हि सः
पुनर्वैश्रवणो विप्रो हतो नीतिर्हता श्रुतेः॥

[पृष्ठ ६१ (क्रमागत)]

पापं विना स्वकीया स्त्री त्यक्ता पापरतेन यत् ।
तत्रापि श्रुतिमार्गश्च ध्वंसितः स्वार्थहेतवे ॥
स्वजनन्याः शिरश्छिन्नमवतारे रसाख्यके ।
गुरुपुत्रापमानश्च कृतोऽनेन दुरात्मना ॥
कृष्णो भूत्वाऽन्या नार्यश्च दूषिताः कुलधर्मतः ।
श्रुतिमार्गं परित्यज्य स्वविवाहाः कृतास्तथा ॥
पुनश्च वेदमार्गो हि निन्दितो नवमे भवे ।
स्थापितं नास्तिकमतं वेदमार्गविरोधकृत् ॥"

तात्पर्य—स्वयं विष्णु ने और उनके सभी अवतारों ने छल का व्यवहार किया है तथा ऐसे कार्य किए हैं जो वेदानुसार दूषित और आचार के विरुद्ध हैं।

टिप्पणी २. भगवद्गीता, १५-१५ :—

"मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च ।"

टिप्पणी ३. कौशीतकी उपनिषद्, ३-९ :—

"एष ह्येवैनं साधुकर्म्म कारयति तं यमन्वानुनेषत्येष एवैनमसाधुकर्म्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो नुनुत्सते ।"

इसका एक उत्तम पाठ कॉवेल के संस्करण में दिया हुआ है, पृष्ठ १०१ :—

"एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो उन्निनीषत एष उ एवा-साधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते।"

पृष्ठ ६२

टिप्पणी १. छल करने पर भी बुद्ध-पूज्यत्व-विधान के मूलवचन

बुद्धस्य छलनधर्मित्वेऽपि पूज्यत्वविधानम्

भागवतपुराण, १-३-२४ से :—

"ततः कलौ संप्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥

  

जन्मं गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्वि-मुच्यते॥"

वही, १०-४०-२२ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने।"

गरुड़पुराण, १-२-३२ :—

"ततः कलेस्तु संध्यायां सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषुभविष्यति॥
तस्मात् सर्गादयो जाताः
संपूज्यश्च व्रतादिना॥"

[पृष्ठ ६२ (क्रमागत)]

वही, १-१४९-३९ :—

"वासुदेवः पुनर्बुद्धः सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
देवादिरक्षणार्थाय अधर्महरणाय च ॥
भारतांश्चावतारांश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः ॥

कूर्मपुराण, १०-४८ :—

"नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो मुक्ताय हेतवे ।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः ॥"

वायुपुराण, ३०-२२५ :—

"नमो शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणायाक्षताय च ।"

[अन्य स्थल—महाभारत, शांति-पर्व, भीष्मस्तवराज ; तंत्रसार, विष्णु स्तोत्र ; दोनों ऊपर उद्धृत किए जा चुके हैं] ।

तात्पर्य—जिन बुद्ध ने नास्तिकों को वेदमार्ग से हटाकर वेदों को उनसे दूषित होने से बचाया उनकी चर्चा संमान-पूर्वक होती एवं सुनी जाती है । उन्हें लोग नमस्कार करते हैं एवं वेदानुयायी हिंदुओं द्वारा वे पूजे जाते हैं । ऐसा आदेश स्वयं हिंदुओं के धर्मग्रंथ देते हैं ।

[पृष्ठ ६२ (क्रमागत)]

टिप्पणी २. भागवतपुराण, ६-८-१७ :—

" द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्
बुद्धस्तु पाषण्डगणप्रमादात्।
कल्की कलेः कालमलात् प्रपातु
धर्म्मावनायोरुकृतावतारः ॥"

गरुड़पुराण , २०२-११ :—

" बुद्धः पाषण्डसङ्घातात् कल्किरवतु
कल्मषात् ।"

['पाषण्ड' शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए होता है जो लोग वैदिक धर्म अथवा सनातनधर्म का विरोध करते हैं। देखो लिंगपुराण ४०-४०:--" वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः। "

तात्पर्य—वेद स्वयं प्रकट हुए माने जाते हैं। अतः ये केवल ऐसे धर्मानुयायियों के निमित्त हैं जिनका उनमें दृढ़ विश्वास है। जिनको वेदों के स्वयं प्रकट होने में विश्वास नहीं है वे वेद को दूषित अथवा उसे सर्वथा नष्ट ही कर डालते हैं। इसलिए यह देखकर कि कलियुग में नास्तिकों

प्राबल्य होगा, बुद्ध उपयुक्त अवसर पर अवतरित हुए और उन लोगों के हाथों से वेदों की रक्षा करने का उपाय किया।

पृष्ठ ६३

टिप्पणी २. स्थविर अथवा स्थिर (अर्थात् वृद्ध) पाली में थेर कहे जाते थे। उनके उत्तराधिकारी अथवा स्थिरपुत्र थेरपुत्त (अर्थात् थेर के लड़के) कहलाते थे। ये लोग ओष-धियों के निरीक्षक थे। इन्हीं के नामों से अँगरेजी का थेरापिउटिक्स (Thera-peutics) शब्द निकला है, जिसका अर्थ होता है व्रणचिकित्सा।

पृष्ठ ६४

टिप्पणी १. देखो विंसेंट स्मिथ : The Oxford History of India, Book 1, Chap. 3, पृष्ठ ५५ 'No Buddhist Period' शीर्षक निबंध।

पृष्ठ ६५

टिप्पणी १. ललितविस्तर, अध्याय २५ (लेफमैनवाला संस्करण, पृष्ठ ४००, पंक्ति १९) :—

" श्रृण्वन्ति धर्मं मगधेषु सत्त्वाः। "

महाभारत, भीष्मपर्व, ११-३६ :—

"मंगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मंगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः मागधाः क्षत्रियास्तथा॥"

विष्णुपुराण, २-४-६९ :—

"मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा॥"

सांबपुराण, १६-८७ से ८८ (अथवा कुछ प्रतियों में २६-३० से ३१) :—

"मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः मामगाः क्षत्रियास्तथा॥"

पद्मपुराण, स्वर्गखंड, ८-३४ :—

"मगाश्च मशकाश्चैव मानसा मल्लकास्तथा।
मगाश्च ब्रह्मभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता द्विजाः॥"

[कुछ संस्करणों में 'मगाश्च' के स्थान पर 'मृगाश्च' पाठ है। देखो सेंट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी—'मृग' शब्द में]।

उपसंहार

पृष्ठ ६६

टिप्पणी १. सूतसंहिता, ४-२०-१६ :—

"समूलेषु च धर्म्मेषु वुद्धागमन समन्तिः।
धर्म्मः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो मया वेदार्थपारगाः॥"

पृष्ठ ७१

टिप्पणी १. हक के Travel (यात्रा-विवरण) में कहा गया है कि चांकापा अपने मत को अंशतः बौद्धधर्म से और प्रधानतः ईसाई-धर्म की रोमन कैथोलिक मिश्नरी से निकला हुआ बतलाता है। यह उसे मार्ग में मिला था। इसी प्रकार की साक्षियाँ प्रिंसेप ने अपने 'Tibet, Tartary and Mongolia' में इकट्ठी की हैं।

बौद्धों के अपगत-पदप्रक्षालण अर्थात् 'पैर धोने के दोष से मुक्त' संप्रदाय के समान ही सेंट ऐंथोनी अर्थात् धार्मिक कुलपति (patriarch of monachism) के रूप में क्रिश्चियन फादर्स (Christian Fathers) का एक संप्रदाय पाया जाता है। [देखो Maudsley : Body and Mind, Psychological Essays, पृष्ठ ११७]।

पृष्ठ ७३

टिप्पणी १. अष्टसाहस्रिकाकी प्रस्तावना :—

भगवती-प्रज्ञापारमिता-स्तोत्रम् ।

"ॐ नमो भगवत्यै आर्य्यप्रज्ञापारमितायै ।
निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते ।
या त्वं सर्वानवद्याङ्गि निरवद्यैर्निरीक्ष्यसे ॥"

पृष्ठ ७४

टिप्पणी १. अग्निपुराण, ४९-८ :—

"शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्द्ध्व पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥"

टिप्पणी २. ऋग्वेद, खिलसूक्त, २८-६ :—

" अग्निं प्रत्यक्षदैवतम् । "

बृहन्नारदीयपुराण, २-३९ :—

"भूम्यादिलोकत्रितयं संहत्यात्मानमात्मना ।
पश्यन्ति योगिनः सर्वे तमीशानं भजाम्यहम् ॥"

(प्रसंग से ज्ञात होगा कि पद्य बुद्ध की स्तुति का है) ।

पृष्ठ ७७

टिप्पणी २. कनिंघम : Coins of Ancient India, पृष्ठ ७५-७८ :—

" योधेय प्राचीन भारत की एक अतिप्रसिद्ध जाति थी ।

" योधेयों के सिक्के ❀ ❀ दो प्रकार के

[पृष्ठ ७७ (क्रमागत)]

हैं। प्राचीन सिक्के ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी के हैं और परवर्ती सिक्के लगभग ३०० ईसवी के हैं।

" एक तीसरे प्रकार के सिके हैं जो संभवतः कुछ ही पीछे के हैं। उनमें एक ओर छः शिर की मूर्ति खचित है। यह मूर्ति कार्तिकेय की है, जिनका नाम 'षड़ानन' है। अतः ये पिछले सिक्के ब्राह्मणकाल के हैं।

" चित्र-फलक ६, आकृति १। इसमें बोधितरु, बौद्ध लोहस्तंभ और चार छोटे-छोटे वृत्त हैं।

" चित्र-फलक ६, आकृति २, ३। ऊपर की ओर—भारतीय कहानी, यौधेयानी। नीचे की ओर त्रिरत्न और धर्मचक्र के संयुक्त चिह्न।

" चित्र-फलक ६, आकृति ९। ऊपर की ओर—छः शिरवाली पुरुषाकृति। भारतीय कहानी, भागवतो स्वामिन ब्राह्मण

यौधेय। नीचे की ओर—छः शिरवाली मूर्ति, चैत्य और वोधितरु के मध्य संमुख खड़ी है।"

पृष्ठ ७८

टिप्पणी १. वाचस्पति मिश्र : न्यायवार्तिक-तात्पर्य टीका, पृष्ठ ३०० (विजयानगरं सीरीज में) :—

"नहि प्रमाणीकृत वौद्धाद्यागमा अपि लोकयात्रायां श्रुतिस्मृतीतिहास-पुराणनिरपेक्षागममात्रेण प्रवर्त्तन्ते। अपि तु तेऽपि सांवृतमेतदिति ब्रुवाणा लोकयात्रायां श्रुत्यादीनेवानुसरन्ति।"

हिंदी अनुवाद—व्यावहारिक जीवन के संबंध में वौद्धों के आगम (शास्त्र) भी, जो प्रमाणीकृत नहीं है, श्रुति-स्मृति, इतिहास और पुराणों पर अवलंबित हैं। वौद्ध लोग भी 'यही रीति है' (सांवृत-मेतत्) कहते हुए व्यावहारिक जीवन में वेदों का ही अनुगमन करते हैं।

[रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९०२ के जनरल के पृष्ठ ३७६ पर के

Vallee Poussin's 'Authority of Buddhist Agamas' से उद्धृत]।

पृष्ठ ८२

टिप्पणी ३. श्रीमच्छंकराचार्य के दशावतार-स्तोत्र में :—

"य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्ती।"

पृष्ठ ८४

टिप्पणी १. तारानाथ वैसे ही हैं जैसे तिब्बत के कुन्स्जंग।

पृष्ठ ८५

टिप्पणी १. पद्मपुराण, क्रियाखंड ६-१८८ :—

"वेदा विनिन्दिता येन विलोक्य पशुहिंसनम्।
सद्रूपेन त्वया येन तस्मै बुद्धाय ते नमः॥"

भागवतपुराण, ११-४-२२ :—

"वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्।"

शंकरविजय, १२-८ :—

"प्रायः क्रतुद्वेषकृतादराय बोधैकधाम्ने
स्पृहयामि भूम्ने।"

गीतगोविंद, अवतारों के श्लोक :—

"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशवधृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।"

[पृष्ठ ८५ (क्रमागत)]

टिप्पणी २. मुंडकोपनिषद्, १-२-७ से १० :—

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
❀ ❀ लोकं हीनतरं चाविशन्ति ॥"

गफ : Philosophy of the Upanishadas, पृष्ठ १०२ (उपर्युक्त पद का अनुवाद) :—

" विधिपूर्वक अष्टादशांगों से युक्त यज्ञ करना तिनके की एक क्षण-भंगुर नाव है। जो लोग यज्ञ करने को सर्वोत्कृष्ट समझकर उसी में परितुष्ट रहते हैं वे लोग अपने विमोह के कारण पुनः हीनतर और मरणशील लोक में प्रविष्ट होंगे" (अर्थात् मृत्युलोक में पुनः जन्म लेंगे)।

तात्पर्य—पशुबलि के द्वारा जो यज्ञ-क्रिया की जाती है वह मनुष्य को मरण के अनंतर मृत्युलोक से ऊपर नहीं उठने देती। जो लोग दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं यदि वे इसी को

[पृष्ठ ८५ (क्रमागत)]

मानव-जीवन का परम कर्तव्य समझते हैं तो वे स्वर्ग में जायँगे, पर अंत में उन्हें पुनः मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करना पड़ेगा (कहने का भाव यह है कि तत्त्व-ज्ञान का सत्कर्मों से संयुक्त होना परमावश्यक है, जिससे मनुष्य को शाश्वत् अमरपद प्राप्त हो। मिलाओ—ईशावास्योपनिषद्, पद्य ९-११)।

श्रीमद्भगवद्गीता, २-४२ से ४६ :—

"यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः।

* * *

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्य्यगतिं प्रति॥

* * *

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।"

आदि आदि।

तात्पर्य—यदि श्रमपूर्वक की जानेवाली धार्मिक क्रियाएँ और रीतियाँ, जो वैदिक कर्मकांड में भर गई हैं, छोड़ दी जायँ तो अच्छा ही है।

पृष्ठ ८७

टिप्पणी १. पद्मपुराण, विज्ञानभिक्षु द्वारा उद्धृत :—

"दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा।
बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् ॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैवकथितं देवि जगतां नाशकारणात् ॥
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव तत्।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥"

—सांख्यप्रवचनभाष्य, १-२२।

(देखो गार्बे की प्रति, हरवर्ड, पृष्ठ १६, पंक्ति ७-११)।

पृष्ठ ६१

टिप्पणी १. छांदोग्योपनिषद्, ५-१०-७ :—

" तद्य इह रमणीयचरणा अभ्यशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। "

मैक्समूलर के व्याख्यान, शोभ के 'Old Gaya and Gayawals' में उद्धृत (पृष्ठ ३८)।

पृष्ठ ६७

टिप्पणी २. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४-४-१३ (शतपथ-

ब्राह्मण, १४-७-२-१७ भी) :—

" यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध
आत्माऽस्मिन् देहे गहने प्रविष्टः
स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्त्ता
तस्य लोकः स उ लोक एव ॥ "

पृष्ठ १०१

टिप्पणी १. "निर्वाण ही एक ऐसी वस्तु है जो किसी कारण का न तो कार्य है और न किसी कार्य का कारण ।"—Dahlke : Buddhist Essays (शीलाचार का अनुवाद, पृष्ठ ८८) ।

पृष्ठ १०२

टिप्पणी १. महापरिनिर्वाण सुत्र, अध्याय ५, § ६ :—

इच्छा-शक्ति और कर्तव्य का संस्कार ही बौद्धधर्म है (महापरिनिर्वाण सूत्र अध्याय २, § ३३ ; अध्याय ५, §§ ४-६) :—

" अतः हे आनंद ! अपने अंतः-करण के लिए तुम दीपक बनो । तुम अपने लिए आश्रय होओ । किसी बाह्य-

[पृष्ठ १०२ (क्रमागत)]

श्रय को मत ग्रहण करो। सत्य को दीपक की भाँति दृढ़ता से पकड़ो। सत्य को एक आश्रय की भाँति धारण करो। अपने किसी समीपवर्ती को आश्रय के लिए मत निरखो।

" उस समय शाल-तरु-युगल ऋतु के कारण फूलों से लदे हुए एक ही जान पड़ते थे। तथागत को पूर्वबुद्धों का परवर्ती जानकर वे उनके शरीर पर संमान के लिए फूलों की वर्षा कर रहे थे। दिव्य चंदन और मंदार पुष्प आकाश से बरस रहे थे। पूर्वबुद्धों के परवर्ती के संमान में आकाश से संगीत और गान की ध्वनि आ रही थी। तब मंगलमूर्ति ने महामान्य आनंद को संबोधित कर कहा—" हे आनंद! इस प्रकार वस्तुतः तथागत का समुचित संमान, पूजन, उपासना और सत्कार नहीं होता। वरन् जो भिक्षु अथवा भिक्षुणी जीवन में निरंतर बड़े और छोटे

सभी शुद्ध कर्तव्यों का पालन करते हैं और उनके अनुशासन को मानकर चलते हैं वे ही लोग तथागत का समुचित संमान, पूजन, उपासना और सत्कार करते हैं और यही उनका सर्वोत्तम अर्चन है। अतः हे आनंद! बड़े और छोटे सभी कर्तव्यों के संपन्न करने में दृढ़चित्त बनो। जीवन में शुद्ध होओ और अनुशासन के अनुसार आचरण करो। आनंद! इसको शिक्षा इसी प्रकार देनी चाहिए।"

पृष्ठ १०३

टिप्पणी १. ऋग्वेदसंहिता, आरंभ :—"अग्निमीडे पुरोहितम्।"

कृष्ण यजुर्वेद, १-५-१०-२; कठसंहिता (चरक शाखा), ७-१४; सामविधान ब्राह्मण, ३-४-४ :—

"अयमग्निः श्रेष्ठतमः।"

तैत्तिरीयब्राह्मण, २-४-३-३ :—

"अग्निरग्रे प्रथमो देवानाम्।"

[पृष्ठ १०३ (क्रमागत)]

महाभारत, राजधर्म, ८-३७ :—

"शाश्वतोऽयं भूतिपथो नास्त्यन्तमनुशुश्रुम।"

टीका—[अनादिरनन्तश्चायं यज्ञियः पन्था इत्यर्थः। नीलकंठः।]

वही, ६०-५२ :—

"स्तेनो वा यदि वा पापो यदि वा पापकृत्तमः।
यष्टुमिच्छति यज्ञं यः साधुमेव वदन्ति तम्॥"

(साधु और साधना शब्दों का मूल अर्थ यही जान पड़ता है। साधु वह है जो यज्ञ करता है (संस्कृत—साधते)। यज्ञ अग्नि में आहुति देने को कहते हैं। इसके साथ बलिदान का संयोग पीछे से हुआ है।

शंकराचार्य : साधनापंचक, पद्य १ :—

"वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं
कर्म्म स्वनुष्ठीयताम्।"

तात्पर्य—एक ही प्रधान वेद (ऋग्वेद) का अध्ययन करो और उसके कथित एक ही कर्म का अनुष्ठान करो। ऋग्वेद

के अध्येता जानते हैं कि यह एक कर्म अग्निहोत्र अर्थात् अग्नि-उपासना है। देखो शंकराचार्य की स्वलिखित 'कर्म' शब्द की व्याख्या, उनके ईशोपनिषद्-भाष्य में (मंत्र २ और ११)।

परिशिष्ट

पृष्ठ १०७

टिप्पणी १. महाभारत, राजधर्म, १५-४९ :—

"अहिंसा साधुहिंसा॥"

तात्पर्य—दुष्टों का बचाना साधुओं का संहार करना है। 'अहिंसा' शब्द का वास्तविक अर्थ इसी वचन से निकलता है। इसका अर्थ पशुबलि नहीं हो सकता। इसका अर्थ है "भूल के प्रति एकांत घृणा का अभाव" अर्थात् आघातों के लिए एकांत क्षमा।

पृष्ठ १०८

टिप्पणी १. विद्यारण्य का जीवन्मुक्ति-विवेक, अध्याय २ :—

"नमोऽस्तु कोपदेवाय स्वाश्रयज्वालिने भृशम्।"

पृष्ठ १११

टिप्पणी २. महाभारत, उद्योगपर्व, ३३-४८ से :—

"एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा॥"

वही, द्रोणपर्व, १९८-५९ :—

"वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत्।"

तात्पर्य—सबको क्षमा कर देनेवाला मनुष्य निर्बल और असमर्थ समझा जाता है। तो भी क्षमा करना सर्वोत्तम गुण है, क्योंकि इससे उस शांति की पुष्टि होती है जिससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है।

पैस्कल : यह उद्धरण आदम्स के Secret of Success नामक ग्रंथ का है, पृष्ठ २२२।

पृष्ठ ११२

टिप्पणी २. ऋग्वेद, ६-४८-१०; सामवेद, २-९७४ :—

" हेडांसि दैव्या युयोधि
नोऽदेवानि ह्वरांसि च।"

तात्पर्य—प्रकृतिगत द्वेष और अदेव-तुल्य मात्सर्य को दूर करो।

"ततो न विजुगुप्सते।"

तात्पर्य—मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी प्रकृतिस्थ जुगुप्सा को रोके (जब कि वह अपनी आत्मा और समस्त जीवों की आत्मा को एक समझता है)।

पृष्ठ ११३

टिप्पणी १. धम्मपद, २६-१७, पाली वचन :—

"अक्कोसं वधबन्धं च अदुट्ठो यो तितक्खति।
खन्तीबलं बलानिकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥"

[संस्कृत—अक्रोशन् वधबन्धौ च अदुष्टो यस्तितिक्षति। क्षान्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम्॥]

—यह उक्ति, जो अद्वितीय समझी जाती है, उचित ही है।

पृष्ठ ११६

टिप्पणी २. यह समस्त वचन स्मरण से उद्धृत किया गया है। मूलवचन विस्मृत हो गया है।

अनुलेख

'वध करने में घृणा की भावना होती है' (मिलाओ 'परिशिष्ट' का आरंभ) इसे ध्यान में रखने से यह बात

भी समझ में आ सकती है कि जो धर्म प्रेम-भाव उत्पन्न करने का अभिलाषी है वह कभी भी किसी जीव के वध करने की संमति नहीं दे सकता। तो भी ऐसी दुःखदायिनी रीति आवश्यकतानुसार प्रचलित हो ही गई; परंतु प्रत्येक अवस्था में रीति ही धर्म नहीं है।

इस पुस्तक का 'परिशिष्ट' एक साहित्यिक निबंध है। उसका मूल-पुस्तक से ठीक-ठीक कुछ वैसा संबंध नहीं है। यह इसलिए जोड़ दिया गया है जिससे अहिंसा का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाय, क्योंकि अहिंसा बौद्धधर्म का एक प्रधान सिद्धांत है और इसी के विषय में बहुत-सी भ्रांतियाँ फैल गई हैं। बहुधा यह कल्पना की जाती है कि बुद्ध के धर्म में सब जगह पशुवध को रोकने का आदेश है, और उसका अभिप्राय बौद्धधर्म में ऐसे वध से विरत होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पर वास्तविक बात यह नहीं है। जो व्यक्ति इस प्राकृतिक नियम को भली भाँति जानता था कि जीवों को अपने भरण-पोषण और जीविका के लिए एक-दूसरे का शिकार करना आवश्यक है और जिसने इस नियम को अपने कर्म (प्रतिफल) के सिद्धांत का एवं उक्त सिद्धांत के अनुसार निरूपित आचार-नीति का आधार बनाया था, वह व्यक्ति पशुवध के संबंध में उतना

करुणार्द्र कभी नहीं हो सकता, जितना वह समझ जाता है। यह कल्पना इस बात पर की जाती है कि बुद्ध ने धार्मिक अंग के रूप में पशुवध का विरोध किया था, जो उनके समय में ब्राह्मणों द्वारा यज्ञों में किया जाता था। ब्राह्मण लोग स्वयं यज्ञांग के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पशुवध का यथापद्धति विरोध करते थे, क्योंकि वे मानते थे कि यज्ञ में वध किए हुए जीव की आत्मा स्वर्ग जाती है, और इस दयालुता एवं परोपकारिता के कृत्य के बदले में वह आत्मा यजमान की आत्मा को भी मरणोपरांत स्वर्ग ले जाती है। इसलिए ब्राह्मण कहते हैं कि यज्ञ में पशु का वध करना हिंसाकर्म (विद्वेष) नहीं है, अहिंसाकर्म (अनुकंपा) है। परंतु वे लोग यह भी मानते हैं कि यज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र पशु का वध करना सदा हिंसा-कार्य ही समझा जायगा। (इस ब्राह्मण-मत के संबंध में देखो स्वर्गीय डा. के. एम. बैनर्जी का Tract on the Relation between Christianity and Hinduism और डा. लॉ का Article on the Education of the Jainas)। 'अहिंसा' शब्द उपनिषदों में प्रयुक्त हुआ है और छांदोग्योपनिषद् (३-१७-४) की बृहदारण्यकोपनिषद् (५-२-३) से तुलना करने पर ज्ञात होगा कि इस शब्द का मूल अर्थ वही है जो

'दया' का। दया शब्द सहानुभूति, प्रेम, कृपा, परोपकार आदि का पर्याय है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ यही है, इसका निश्चय ऊपर उद्धृत महाभारत के वचन (पृष्ठ १४७, पंक्ति ७) से होता है। उक्त वचन बतलाता है कि "दुष्टों के प्रति अहिंसा साधुओं की हिंसा है।" इस वचन में अहिंसा का अर्थ पशुबलि नहीं लिया जा सकता। इस शब्द का वास्तविक अर्थ है—"अन्याय के प्रति घृणा का एकांत अभाव". अर्थात् समस्त अपकारों की एकांत क्षमा; और उक्त वचन, जिसका अर्थ है "दुष्ट को बचाना साधु को मारना है", इस बात की व्याख्या करता है कि उदारता आचार का अभाव है।

बुद्ध-मीमांसा

(तृतीय खंड)

बौद्धधर्म-विषयक सत्यता

प्रस्तावना—इस पुस्तक में इन दो अद्भुत तथ्यों की व्याख्या की गई है कि बुद्ध के विष्णु का अवतार माने जाने पर भी भारत से बौद्धधर्म का लोप क्यों हो गया और हिंदुओं में नामांतर से बुद्ध की मूर्तियों का पूजन अब भी होता है।

निम्नलिखित बातों से इन तथ्यों का तर्कसिद्ध उत्तर मिलेगा।

(१) असत्य बात—बुद्ध यद्यपि भारत में उत्पन्न हुए थे तथापि वे मंगोलियन वंश के थे और उन्होंने उस धर्म का

उपदेश दिया था जो एकदम हिंदू-धर्म के विरुद्ध था। इसी कारण हिंदुओं ने उनका बहिष्कार किया। विदेशी लोग उस अमूल्य नररत्न को अपना बतलाकर ले लेने के लिए और उनके द्वारा प्रचारित उक्त धर्म को विलुप्त होने से बचाने के लिए भारत आए। उन्होंने उनके संमान में मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण किया और अपना एक संप्रदाय स्थापित किया। इस प्रकार उन्होंने अपने बीच उस धर्म का प्रचार किया। इसलिए बुद्ध एकदम विदेशियों के देवता थे और अब भी हैं।

(२) सत्य बात—बुद्ध वस्तुतः गौतम के प्राचीन गोत्र के थे, अतः वे निश्चयात्मक रूप से एक मूल हिंदू-वंश में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने भारत में किसी नये मत (या धर्म) का प्रचार नहीं किया, वरन् उन्होंने एक प्रकार से धर्म-सुधार का उपदेश दिया था, जो विशेषतः धार्मिक क्षेत्र में फैले हुए पशुवध के दूर करने के विचार से दिया गया था। उनके कितने ही अनुयायियों[1] ने उनकी मृत्यु के पश्चात् अपना एक संप्रदाय भी स्थापित कर लिया, जो हिंदू-धर्म के ही अंतर्गत रहा। उन्हीं लोगों ने संपूर्ण भारत में बौद्ध-

---

[1] बुद्ध द्वारा काश्यप (विपक्षी दल के नेता) के मत-परिवर्तन से ही इस धर्म-सुधार की वास्तविक नींव डाली थी।

मंदिर एवं मूर्तियाँ बनवाई थीं, न कि विदेशियों ने। उन्होंने विदेशी जातियों के लोगों को भी अपने संघ का मतावलंबी बनाया और उन्हें अपने संप्रदाय में स्वीकृत कर लिया। इस प्रकार विदेशी सिद्धांत भी उनके संप्रदाय में प्रविष्ट होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि कट्टर हिंदुओं ने उस संप्रदाय का बहिष्कार कर दिया, क्योंकि वे लोग विदेशियों का संमिश्रण करने के पक्ष में कभी नहीं थे। इसका कारण यह है कि विदेशी लोग ऐसी वस्तुएँ चढ़ाकर मंदिरों को अपवित्र कर डालते हैं जो हिंदुओं के लिए वर्जित हैं। बौद्ध-संप्रदाय के जाति-बहिष्कृत हो जाने के पश्चात् बुद्ध के हिंदू-पूजकों ने उन जाति-बहिष्कृत बौद्धों से अपना समुदाय अलग कर लिया और ये लोग बुद्ध की पूजा प्रच्छन्न रूप में करने लगे, अर्थात् विदेशियों द्वारा की जानेवाली अपवित्रता के आक्रमण का परिहार करने के उद्देश्य से उन्होंने बुद्ध-मूर्तियों के ऐसे-ऐसे नाम रखे जो हिंदू-पुराणों में स्वीकृत थे। काल-क्रम से मूर्तियों के इस

---

१ भारत में बौद्धों के मंदिर, मूर्तियाँ और तीर्थस्थान अधिकांश में प्राचीनतर हिंदू-बौद्धधर्म के भग्नावशेष हैं। इसीलिए न्यायतः हिंदू ही उनके स्वत्त्वाधिकारी भी हैं।

वेशांतर का अभिप्राय लोग भूल गए और उक्त वेशांतरित मूर्तियाँ वस्तुतः में बुद्ध-मूर्तियों से पृथक् समझी जाने लगीं। यही कारण है कि आधुनिक काल के हिंदू स्वतः विश्वास करने लगे हैं कि बुद्ध कभी भी हमारे देवता नहीं थे, अपितु वे सदा से विदेशियों के ही देवता रहे हैं।

(३) उपसंहार—गौतम बुद्ध को हिंदू वर्तमान युग का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानते हैं। वे कलियुग के ईश्वरावतार माने जाते हैं। ऐसी अवस्था में हिंदुओं को बुद्ध की पूजा का प्रचलन उसी शुद्ध रूप से करना चाहिए जिस रूप में उसका प्रचार प्राचीनकाल में था। अब उन्हें अपने को बुद्ध का उपासक कहनेवाले विदेशियों के आक्रमण से बचने के लिए सब प्रकार से सतर्कता से काम लेना चाहिए।

[1] (१) आरंभिक बौद्धधर्म (गौतम बुद्ध और उनके तत्कालीन अनुयायियों का धर्म)।

गौतम बुद्ध का व्यक्तिगत धर्म हिंदू-धर्म था। प्रचलित हिंदू-धर्म से इसके पार्थक्य का कारण था कर्मकांड से

---

१ 'बुद्ध के हिंदू होने के विषय' में देखो वैडेल : Buddha's Secret, form a Sixth Century Commentary (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, १८९४, पृष्ठ २७२)।

इसका मतभेद (विशेषतः यज्ञ की पशुवलि से) और शुद्ध वैदिक धर्म की ओर इसकी प्रवृत्ति[१]। यह वात ठीक ही है कि "यदि शुद्ध वेदवाद में जनता का विश्वास होता तो वुद्ध की आवश्यकता न होती[२]।" हिंदू-धर्मशास्त्र तक इस वात को मानते हैं कि "वेदमूलक सभी धर्मों में वौद्ध-धर्म सर्वोत्तम है[३]।"

वुद्ध ने वैदिक ऋषियों की भाँति, जिनका अनुसरण उन्होंने अपनी अधिकांश शिक्षा में किया है[४], यह शिक्षा दी कि मनुष्य की पूर्णता का पथ न तो केवल

---

१ विख्यात विद्वानों के अन्वेषणों द्वारा यह वात निश्चित हो चुकी है। देखो मैक्समूलर : Chips from a German Workshop ;—सेन्स हार्डी : Legends and Theories of the Buddists ;—वील : Buddhist Pilgrims ;—मोनियर विलियम्स : Buddhism ; - र्‌हीस डेविड्स : Buddhism ;—एलिजावेथ ए. रीड : Primitive Buddhism ;—पॉवेल : Buddha, the Reformer of Brahmism ;—क्लार्क Buddhism or The Protestantism of the East.

२ सेवेल : Early Buddhist Symbolism.

३ स्कंधपुराण ; सूतसंहिता ; ४-२०-१६। मिलाओ स्वामी विवेकानंद :—' Buddhism, a Fulfilment of Hinduism " (देखो शिकागो के व्याख्यान)।

४ मिलाओ ओल्डेनवर्ग : Die Religion des Veda und

कर्म ही है और न केवल ज्ञान ही। अपितु सद्ज्ञान-और सत्कर्म का संमिश्रण ही वह पथ है, जिसे उन्होंने मध्य-पथ कहा है[1]। सद्ज्ञान से उनका अभिप्राय वस्तुतः उस ज्ञान से था जिसका आदेश वेद करते हैं। यह ज्ञान वही है जिसे उन्होंने बुद्धगया के बोधितरु के नीचे बुद्धत्व-प्राप्ति के समय पाया था अर्थात् आत्मा शरीर का निर्माता है, और इस बात का ज्ञान हो जाने से आत्मा

---

der Buddhismus ;—ला वैली पासिन : On the Authority of the Buddhist Agamas ;—एडमंड हार्डी : Der Grhya-Ritus pratyavarohona im Pali-Kanon ; फ्रांके : Die Gathas des Vinaya-pitaka und ihre Parallelin ;—फ्यूह्रर ; Manusara-dhamma-sattham (Buddhistic) compared with Manava-dharm-sastram (Brahmanical) ;—ब्यूलर : Buddha's quotation of a Gatha by Sanatkumara ;—वाटनेब : The Story of Kalmasapada, a study in the Mahabharata and the Jataka.

१ धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र में बुद्ध सदाचार के साम्राज्य की नींव जीवन के मध्य-मार्ग पर देते हैं, जिसका पर्यवसान सत्कर्म एवं सद्भाव में होता। (देखो र्‌हीस डेविड्स : Buddhist Suttas, पृष्ठ १४७)। त्विश्य जातक में बौद्ध गृहस्थ का वास्तविक धर्म धर्माभ्यास के साथ-ही-साथ वेदाध्ययन भी बताया गया है। (देखो शरच्चंद्रदास : Indian Pandits in the Land of Snow, पृष्ठ ८७)।

की संसार से मुक्ति हो जाती है[1]। उन्होंने वेद-कथित

---

१ धम्मपद : ११-९। यह विश्वास पूर्वस्थापित सत्य की पुनरावृत्ति मात्र था। इसकी घोषणा सभी प्राचीन वैदिक ऋषियों अथवा पूर्वबुद्धों ने की थी। (देखो वारेन : Buddhism in Translations , पृष्ठ ८३)। बुद्ध का दूसरा नाम है 'अद्वयवादिन्'। (देखो अमरकोश, १-१-१-८)।

हिंदू-धर्मानुसार किसी मनुष्य के सद्ज्ञान प्राप्त कर लेने का प्रमाण उसमें ऐसी शक्ति का आ जाना है जिससे वह अपने पूर्व-जन्मों की परंपरा का स्मरण कर सके (जातिस्मरत्व)। कहा जाता है कि बुद्ध में यह शक्ति थी ; बौद्धधर्म की जातक-कथाओं का विषय यही है। प्राचीन ऋषि और भगवान् कृष्ण भी इस गुण से संयुक्त होने की घोषणा करते हैं। (देखो भगवद्गीता, ४-५)। कर्म के सिद्धांत का हेतु मनुष्य का यही गुण है, अर्थात् आत्मा का वारं-वार नए जन्म ग्रहण करना और पूर्वजन्मों में किए हुए कर्मों का प्रतिफल पाना। विज्ञान इस सिद्धांत पर आपत्ति करता है और कहता है कि मनुष्य का पूर्वजन्मों का स्मरण कर सकना संभव नहीं, क्योंकि प्रत्येक जन्म में उसका मस्तिष्क और जन्मों से एकदम भिन्न होता है, और स्मृति के लिए मस्तिष्क का एक ही होना आवश्यक है। इस आपत्ति का उत्तर यह है कि स्मृति मस्तिष्क की उपज न होकर बुद्धि की उपज है और उसमें मस्तिष्क एक साधन-मात्र है। मस्तिष्क की यह साधनावस्था किसी विशेष स्थिति में

अनंत आदिकारण की सत्ता स्वीकार की थी[१]। वे यह भी मानते थे कि मनुष्य के विचारों की एक सीमा है, जो

ऐसे व्यक्तियों द्वारा जीती जा सकती है जो विशिष्ट चित्तवृत्तिवाले होते हैं। उदाहरणार्थ यद्यपि नेत्र-पटल के दवाने से एक दृष्टिगत मूर्ति उत्पन्न हो जाती है तथापि "नेत्र-पटल के दवाए विना भी दृष्टिगत मूर्ति का होना संभव है। मनुष्य की बुद्धि के पास ज्ञान का बल है, जो हमारी इन वेचारी पंचेंद्रियों के पास नहीं है।" (देखो रिचेट : Psychical Research, पृष्ठ ६००)।

१ "बौद्धधर्म बहुधा एक नास्तिक धर्म समझा जाता है। किंतु जैसा प्रसिद्ध है बुद्ध ने कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में परमादि-कारण को अस्वीकार नहीं किया।"—(वैडेल : Buddha's Secret, from a Sixth Century Commentary)। इस आदिकारण को उन्होंने 'आर्यप्रज्ञापारमिताऽमिता' के नाम से पुकारा है। यह स्पष्टतः वही है जिसे वेद में 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहा गया है। (मिलाओ अभिधर्म-पिटक, साहस्त्रिका के आरंभिक श्लोकों में)।

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि उक्त आदिकारण अर्थात् 'प्रज्ञापारमिता' को बुद्ध एक देवी के रूप में मानते हैं। बौद्धधर्म में ये तारादेवी के नाम से प्रसिद्ध हैं; और साथ ही हिंदू-धर्म की तारादेवी भी हिंदुओं के ही द्वारा 'प्रज्ञापारमिता'

अनंत के प्रश्नों को समझनेवाली मनुष्य की ज्ञानशक्ति से विरोध रखती है[1]। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि कर्मण्य जीवन ही मनुष्य का वास्तविक जीवन है, और वे यह भी मानते थे कि मन का संदेश अर्थात् सांसारिक अभिलाषाओं से मन को मुक्त कर देना, सभी कर्मों से उत्तम है[2]। उन्होंने इसकी साधना के लिए विविध

के नाम से पुकारी जाती हैं। (देखो अभिनव शंकराचार्य की तारा-रहस्यवृत्ति)।

१ देखो तेविज्ज सुत्त (त्रिविज्ञ सूत्र), र्‌हीस डेविड्स द्वारा अनुवादित बौद्ध सुत्तों में। मिलाओ विंसेंट स्मिथ : The Oxford History of India, पृष्ठ ५४-५५ ;—कॉस्टा : Buddhism, an agnostic religion । स्मरण रखिए कि वैदिक साहित्य में भी यही शिक्षा पाई जाती है। (देखो बृहदारण्यकोपनिषद्, २-६-१)। इसके भरपूर विवरण के लिए देखो मैसन-अवरसेल : History of Indian Philosophy ;—आल्ट्रामियर : Buddhist Theosophy (Therapentics of the Intellect) ;—लिऑन कर्रे : The Ancient Orient, भाग २ ।

२ बौद्धधर्म की प्रमुख पुस्तक धम्मपद की यह प्रधान शिक्षा है। यही परवर्ती बौद्धधर्म की गाथाओं (थेरगाथा और थेरीगाथा) की भी शिक्षा है। यही हिंदुओं की प्रधान पुस्तक गीता की भी शिक्षा है।

रीतियाँ भी निर्धारित की हैं और अन्य विधियों के साथ-साथ उन्होंने अपने सभी शिष्यों के लिए वैदिक अग्निचर्या और होमकर्म की विधि का भी आदेश दिया है[1] अर्थात् अग्निपूजन।

---

१ देखो आर्यमंजुश्री मूलकल्प, पटल १२। इस बात के कितने ही प्रमाण मिलते हैं कि बुद्ध स्वयं अग्नि-पूजक थे। उनका एक नाम था 'अर्कबंधु' (अर्थात् 'सूर्य का मित्र')। जिसका तात्पर्य 'अग्निमित्र' (अग्नि का मित्र) की भाँति अग्नि-पूजक है। (देखो अमरकोश १-१-१-१०)। वैदिक यज्ञ-विधान के अनुसार पूजक को अपना शिरोभाग पगड़ी से ढकना चाहिए (उष्णीप–देखो अथर्ववेद १५-२-१)। ऋषि लोग यह पगड़ी धारण करते थे और बुद्ध भी इससे विहीन नहीं थे। (मिलाओ वैडेल : Buddha's Ushnisha ; a study of Buddhist origins)। यह बात प्रसिद्ध है कि बुद्ध सदा उसी वृक्ष के नीचे बैठा करते थे जिसकी लकड़ी विशेष रूप से यज्ञकर्म के लिए पवित्र समझी जाती है अर्थात् पिप्पल वृक्ष या पीपल का पेड़। (मिलाओ र्‍हीस डेविड्स : Buddhist India, पृष्ठ २३१।–बौद्धों से पहले बुद्धगया में बोधितरु के पूजन के संबंध में देखो डा. ब्लोच की बुद्धगया पर लिखी टिप्पणियाँ, Archaeological Survey of India में)। उनके पूजन का स्थल चैत्य कहलाता था। इस शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है 'यज्ञ की वेदी'। (देखो पाणिनि, ३-१-१३२)। यज्ञ में घृत (घी) का

कुछ लोग मानते हैं कि बुद्ध ने वस्तुतः अपना सुधार सनातनी दल के नेता और उरुविल्व के निवासी काश्यप के मत-परिवर्तन से आरंभ किया है। ये काश्यप वेद-विहित विधि से अग्निकुंड में निरंतर अग्नि सुरक्षित रखते थे[1]। बुद्ध ने इस अग्नि को बुझा दिया था। इसी से लोग मानते हैं कि बुद्ध को न केवल वेद-विरोधी ही समझना चाहिए, वरन् उन्हें हिंदू-धर्म का सच्चा शत्रु और भारत की अवनति का प्रधान कारण मानना चाहिए। परंतु बुद्ध और उनके धर्म के विषय में यह बात सत्य नहीं है। हिंदू-परंपरानुसार यज्ञ (अग्निपूजन) करना सभी गृहस्थों के लिए तो आवश्यक है, पर साधु लोग इसका परित्याग भी कर सकते हैं।

बुद्ध के पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों प्रकार के साधु-उपदेशकों अर्थात् दत्तात्रेय एवं शंकराचार्य के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने अनुयायियों को यज्ञ-कर्म न

प्रयोग और गौओं का संमान बुद्ध के अनुयायियों में अब भी प्रचलित है। वे लोग प्रचुर परिमाण में बुद्ध-मूर्तियों के समक्ष घृत जलाते हैं। (देखो लॉर्ड डन्मोर: The Pamirs, भाग १, पृष्ठ १४५। मिलाओ बौद्धों का प्रदीपदानीय सूत्र भी)।

१ देखो बुद्ध का जीवन-चरित, किसी प्रमाण्य ग्रंथ से।

करने की संमति दे दी थी। बुद्ध ने केवल परंपरागत मार्ग का अनुसरण करते हुए गृहस्थों के लिए यज्ञ करने का और साधुओं के लिए यज्ञ त्यागने का विधान किया था। इसलिए यदि दत्तात्रेय, शंकराचार्य एवं साधुधर्म के अन्य उपदेशक वेद-विरोधी नहीं समझे जाते तो बुद्ध भी वेद-विरोधी नहीं समझे जा सकते, क्योंकि वे प्रधानतः साधु-उपदेशक ही थे।

वेद मनुष्य की जीवन-समाप्ति के समय तक अग्नि-पूजन का आदेश करते हैं। बुद्ध मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए तब तक अग्निपूजन आवश्यक है जब तक वह देवताओं का सामीप्य नहीं प्राप्त कर लेता। इसके पश्चात् वह अग्निपूजन त्याग सकता है। बुद्ध केवल देवताओं के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते थे, वरन् उन्होंने स्वयं देवताओं का साक्षात्कार किया था। यहाँ एक बात उल्लेख-नीय है कि उन्होंने जिन देवताओं के रक्षक-रूप[1] में अपने संनिकट आने की घोषणा की है वे सब हिंदू-धर्म के देवता हैं[2], अर्थात् इंद्र (देवराज), ब्रह्मा (सभा-

---

१ देखो ललितविस्तर, अध्याय २५।

२ मैक्समूलर कहते हैं कि " बुद्ध ने वैदिक देवताओं के विरुद्ध तर्क-वितर्क नहीं किया। " (देखो शोम का Old Gaya

पति), कुबेर (यक्षराज), मार (कामदेव), तारा (देवी) आदि। इसके परिणाम-स्वरूप बौद्धधर्म तंत्रों के साथ संमिश्रित हो गया। तंत्रों में अग्नि द्वारा देवताओं की पूजा का विधान है[1]। इसके अतिरिक्त बौद्धधर्म में देव-पूजन के संबंध में स्वयं बुद्ध ने निम्नलिखित वचन द्वारा मार्ग-निर्देश किया है—"विवेकशील व्यक्ति को चाहिए कि वह देवताओं को बलि प्रदान करे। संमानित होने पर वे उसका आदर करते हैं। जिस मनुष्य के ऊपर देवताओं की कृपा होती है वह सौभाग्यशाली हो जाता है[2]।"

यह सत्य है कि बुद्ध के व्यक्तिगत उपदेश में वैदिक धर्म के प्रधान तत्त्वों पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया गया है। इसका कारण भी स्पष्ट है, क्योंकि जैसा विंसेंट स्मिथ तथा अन्य विद्वानों का विचार है कि "यह कहना कठिन है कि बुद्ध ने कभी नए धर्म के प्रवर्तन का विचार किया था[3]।"

---

and Gayawals, पृष्ठ २८)। मिलाओ नेवेल : The Vahanas of the Brahmanical and Buddhistic Pantheon.

१ देखो, ऊपर।

२ र्‌हीस डेविड्स : Buddhist Suttas, पृष्ठ २०।

३ विंसेंट स्मिथ : Oxford History of India, पृष्ठ ५४-५५। मिलाओ निम्नांकित वाक्य :—"बुद्ध ने प्राचीन धर्म के

वे उन अनाचारों का संस्कार करने के लिए सन्नद्ध हुए थे जो उस समय हिंदू-धर्म में व्याप्त हो गए थे। अपने सुधार-क्षेत्र के बाहर उन्होंने इस विचार से मौन धारण कर लिया था कि उस समय के प्रचलित हिंदू-धर्म—जिसके अंतर्गत वे स्वयं थे—के विरुद्ध वे कुछ भी कहना नहीं चाहते थे[1]। यह बात भी बहुत प्रसिद्ध है कि बुद्ध ने अपने

विरुद्ध किसी प्रकार का उद्योग नहीं किया।" (स्मिथ : Cyclopaedia of Names, बुद्ध शब्द के विवरण में)।—"प्रचलित धर्म के साथ उनका बहुत थोड़ा विवाद था।" (रहीस डेविड्स : Buddhism, पृष्ठ ८३)।—"कम-से-कम आरंभ में बौद्धधर्म धार्मिक क्रांति की अपेक्षा कहीं अधिक सामाजिक क्रांति था। यह पुरोहितों के उस मायाजाल का तोड़नेवाला था जिसने ब्राह्मणवाद के रूप में समाज को जकड़ लिया था।" (स्मिथ : Mohammad and Mohammedanism, पृष्ठ ४)।

[1] मिलाओ "बौद्ध-धर्मशास्त्र व्यावहारिक जीवन के संबंध में वेद एवं हिंदू-धर्मशास्त्रों के आश्रित हैं। बौद्ध स्वयं कहते हैं—'इस रीति का आदेश प्राचीन काल से है।' और वे व्यावहारिक जीवन में हिंदुओं की श्रुतियों एवं स्मृतियों का अनुसरण करते हैं।"—वाचस्पति मिश्र : तात्पर्य-टीका (पृष्ठ, ३००, विजियानगरं का संस्करण) देखो ला वेली पासिन : Autho-

शिष्यों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को अधिक गौरव प्रदान किया था[1]। उन्होंने विवाह और पातिव्रत के पवित्र जीवन का समर्थन किया था और पुनर्विवाह एवं अयुक्त विवाहों को गर्हित समझा था। निस्संदेह ये सब बातें उनके द्वारा वास्तविक हिंदू-धर्म का प्रचार होना प्रमाणित करती हैं।

---

rity of the Buddhist Agamas. मिलाओ मोनियर विलियम्स : Buddhism, पृष्ठ २०६ ;—"बौद्धधर्म में हिंदू-धर्म अंतर्भुक्त था।"

१ देखो सुत्तनिपात : २-७। मिलाओ कॉपलस्टन : Buddhism, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १२१ ;—र्‌हीस डेविड्‌स : Buddhism, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ८४। (Non-Christian Systems) ;—कीथ : Buddhist Philosophy, पृष्ठ १२१। बुद्ध ने वर्णधर्म के सिद्धांत की निंदा नहीं की थी, वरन् इस बात का खंडन किया था कि मोक्ष सभी वर्णों को नहीं प्राप्त हो सकता। (मिलाओ चामर्स : The Madhura Sutra) बौद्ध आगम स्वयं कहते हैं : "बोधिसत्त्व अथवा निर्वाचित बुद्ध वर्णभेद को मानते हैं, यह बोधिसत्त्वों का एक विशिष्ट लक्षण है। बोधिसत्त्व ऊँचे वर्णों अर्थात् ब्राह्मण या क्षत्रियवर्ण में ही उत्पन्न होते हैं। बुद्ध उसी गोत्र के थे जिसमें पूर्वबोधिसत्त्व उत्पन्न हुए थे।" (ललितविस्तर, अध्याय २, शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अध्याय १०)।

बुद्ध के तत्कालीन अनुयायियों का धर्म बुद्ध का व्यक्तिगत धर्म था, जिसमें विशेष रूप से बुद्ध की पूजा देवता के रूप में होती थी। वास्तव में स्वयं हिंदुओं ने ही इसका प्रारंभ और प्रचलन किया और हिंदू-धर्म के आदेशों से पूर्ण तथा मिलते हुए सूत्र निर्मित करके उन्होंने इसे विकसित एवं व्यवस्थित किया[1]। आरंभिक बौद्ध बुद्ध-

---

१ अपने धर्मशास्त्रों के अनुसार हिंदू बुद्ध की पूजा का परित्याग नहीं कर सकते, क्योंकि उन लोगों को ऐसे देवता की पूजा के परित्याग करने का निषेध किया गया है जिसकी पंचांग-पूजा-पद्धति (पाँच विधियों से पूजा करने का प्रकार) धर्मग्रंथों में वर्णित है। बुद्ध की पंचांग-पूजा-पद्धति का विधान पुराणों, तंत्रों और हिंदू-धर्मशास्त्रों में पाया जाता है। हनूमान के पूजकों का एक संप्रदाय भी, जो अत्यंत कट्टर सनातनी हिंदू है, हनुमत्सहस्रनाम, में बुद्ध का नाम भी ग्रहण करता है और इस प्रकार हनूमान के द्वारा बुद्ध की वंदना करता है। (देखो हनुमत्सहस्रनामावली ७१४वाँ नाम, खेमराज, बंबई का संस्करण)। ब्रह्मा की पूजा का हिंदुओं के लिए निषेध किया गया है, अतः हिंदू-शास्त्रों में उनकी पंचांग-पूजा-पद्धति नहीं मिल सकती।

यदि पाठक बुद्ध की पंचांग-पूजा देखना चाहें तो उन्हें निम्नलिखित ग्रंथ देखने चाहिएँ :— अग्निपुराण, १६-१ ; ४९-८; ११५-३७ ;—भागवतपुराण, १-३-२४ से २९ ; ६-८-१७ ; १०-४०-

पूजक हिंदुओं की एक शाखा मात्र थे। यह संप्रदाय हिंदुओं के अन्य तादृश संप्रदायों अर्थात् रामोपासक एवं कृष्णो-

---

२२ ;—भविष्यपुराण, २-७२ ;—गरुड़पुराण, १-२-३२ ; १-१४९-३९ ; २-३१-३५ ; २०२-११ ;—कूर्मपुराण, ६-१५ ; १०-४८ ;—लिंग-पुराण, २-४८-२८ से ३२ ;—पद्मपुराण : क्रियाखंड, ६-१८८ ; सृष्टिखंड, ७३-९२ ;—स्कंधपुराण : अवंतिखंड, ६८-२० ; ७०-४ ; सूतगीता, ८-२४ ;—वराहपुराण, ४८-२२ ; ४९ (पूरा अध्याय) ; ५५-३७ ; २११-६५ से ;—वायुपुराण, २-४९-२६ से ; ३०-२२५ ;—विष्णुपुराण, ३-१८-१५ से ;—गर्गसंहिता, विश्वजित्खंड, १३-४९ ; —हेमाद्रि (चतुर्वर्ग-चिंतामणि), व्रतखंड, अध्याय १; अध्याय १५;—निर्णय-सिंधु, अध्याय २ ;—बृहन्नीलतंत्र, ५ ;—मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण, ३६ ;—नारद-पंचरात्र, ४-३-१५६ से ;—तंत्रसार, अध्याय ४ ; —तारातंत्र (संपूर्ण ग्रंथ)। [और अधिक स्थलों के लिए देखो 'बुद्ध-मीमांसा', खंड १, अध्याय २]। उपर्युक्त स्थानों के देखने से ज्ञात होगा कि बुद्ध की पंचांग-पूजा-पद्धति में निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं :—मूर्त्ति-प्रतिष्ठा और शालग्राम-प्रतिष्ठा (बुद्ध की प्रतीकपूजा) ; प्रातःस्मरणम्, ध्यानम्, गायत्री, नमस्कारः (बुद्ध का ध्यान) ; तिलक-धारणम् , व्रत-पूजा, मंत्र और तीर्थयात्रा (बुद्धगया आदि की यात्रा)। केवल अंतिम कृत्य को छोड़कर सभी बातें हिंदुओं के दैनिक धार्मिक कृत्य का अंग बतलाकर उन्हें इसके करने का आदेश दिया गया है।

पासक संप्रदाय के साथ-साथ प्रचलित एवं संवर्धित होता रहा[1]। पर बात इससे भी कहीं अधिक है। बुद्ध हिंदुओं द्वारा वर्तमान कलियुग के अवतार माने जाते हैं[2], इसलिए वे हिंदुओं के परमपूज्य देवता हैं। एक समय ऐसा भी था जब हिंदुओं के सभी संप्रदायों के लोगों को उनकी स्तुति करना आवश्यक था। इस बात का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण संकल्प के मंत्र में प्रचलित 'बौद्धावतार' शब्द का प्रयोग है, और आज भी धार्मिक कार्यों के आरंभ में सभी हिंदुओं के लिए उसके उच्चारण का आदेश है। संकल्प का वह मंत्र इस प्रकार है :—"वैवस्वत मन्वंतर के कलियुग

---

१ मैक्समूलर : 'Buddhism originally a Brahmanic sect.' (Anthropological Religion, पृष्ठ ३४)। मिलाओ र्हीस डेविड्स : Buddhism, १९१०, पृष्ठ ८४।

२ भागवतपुराण, १-३-२८ ;—गरुड़पुराण, १४९-३९ ; ८६-१० ;—कल्किपुराण, २-२-२६ ;—मत्स्यपुराण, ४७-२४७ ; —नृसिंहपुराण, ३६-२९ ;—वराहपुराण, ४-२ ; ११३-२७ ;—वायुपुराण, एकलिंग-माहात्म्य, १२-४३, १४-३९ ;—शंकराचार्य : दशावतार-स्तोत्र ; और जयदेव : गीतगोविंद। बौद्ध लोग भी इस बात को मानते हैं :—देखो ललितविस्तर, अध्याय ७ ; अध्याय १५ ; और मिलाओ राजेंद्रलाल मित्र : बुद्धगया, पृष्ठ ६।

में, जिस युग के देवता बुद्ध हैं, मैं असुक कार्य के आरंभ करने का संकल्प करता हूँ[१]।"

§ २ मध्यकालीन बौद्धधर्म (बुद्ध के धर्म का रूपांतर)।

बौद्धधर्म का यह स्वरूप विंसेंट स्मिथ के नीचे उद्धृत इस कथन में भली भाँति वर्णित है।

"कहना नहीं होगा कि बुद्ध ने नया धर्म प्रचलित करने का विचार नहीं किया था[२]।" बौद्ध मठों के लिए जो संघ (संप्रदाय) शब्द का प्रयोग किया जाता है वह बहुत ठीक है, क्योंकि बुद्ध स्पष्टतया एक हिंदू-सुधारक माने जाते हैं[३]। 'कट्टर हिंदू' पशुबलि का प्रतिपादन करते हैं,

---

१ मूल वचन है—"बौद्धावतारे वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे कलियुगे" आदि। "इस बात के प्रदर्शित करने के लिए शिलालेखों एवं पाषाण-लेखों के सहस्रों प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि बौद्धधर्म का तांत्रिक (हिंदू) रूप किसी समय हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ था।"—राखालदास बनर्जी (आधुनिक काल के एक प्रधान पुरातत्ववेत्ता—महेंजोदारो प्रसिद्धि प्राप्त)।

२ विंसेंट स्मिथ : Oxford History of India, पृष्ठ ५४।

३ वही, पृष्ठ ५२।

पर 'बौद्ध-मतावलंबी' इस कार्य के विरुद्ध हैं[1]।

इस सुधार के फलस्वरूप "ब्राह्मणों का हिंदू-धर्म परिवर्तित हुए बिना नहीं रहा[2]। अहिंसा अर्थात् पशु-वध न करने के सिद्धांत को बहुत-से लोग मानने लगे, इससे प्राचीन हिंदू-विधि-विधानों के बीभत्स तत्त्वों का एक प्रकार से लोप हो गया[3]"। "जब कि एक ओर इस प्रकार हिंदू-धर्म बौद्धधर्म के निकट पहुँच रहा था उसी समय दूसरी ओर बौद्धधर्म भी हिंदू-धर्म से अधिकांश अभिन्न हो गया था[4]।" "वस्तुतः बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित बौद्धधर्म पुस्तकों में निर्दिष्ट कठोर धर्म से सदा अत्यंत भिन्न रहा है[5]।" "यह बहुत संभव है कि अशोक के समय में भी, यदि अधिकांश नहीं तो, अनेक प्रांतों की

---

१ वही, पृष्ठ ५२; पृष्ठ ५६।

२ वही, पृष्ठ ५६।

३ उद्धृत स्थल में ही। कहा जाता है कि सनातनी हिंदुओं का एक बड़ा और प्रतिष्ठित समुदाय, जिसे विहार में 'बाम्हन' कहते हैं, हिंदू-धर्म में अहिंसा को मानने एवं उसका समर्थन करनेवाले 'ब्राह्मणों' से ही निकला है।

४ उद्धृत ग्रंथ में ही, पृष्ठ ५५।

५ उद्धृत स्थल पर ही।

बहुसंख्यक जनता ब्राह्मणों की नीति का अनुसरण करती रही हो[1]।" "बहुत-सी पुस्तकों में पाया जानेवाला 'बौद्ध-काल' पद असत्य और भ्रामक है। कभी भी न तो कोई बौद्ध-काल था और न जैन-काल[2]।" "संभवतः बौद्धधर्म तब तक एक अप्रसिद्ध स्थानीय संप्रदाय के रूप में प्रचलित और मगध एवं आसपास के ही देशों में सीमाबद्ध रहा, जब तक बुद्ध की मृत्यु के कोई दो शताब्दियों से भी अधिक समय के अनंतर होनेवाले अशोक ने इसे अपना सुदृढ़ साहाय्य नहीं प्रदान किया। बौद्धधर्म के भाग्य का निर्माण अशोक ने किया था[3]।" "परंतु जैसे अशोक के मतानुयायी होने से बौद्धधर्म का भाग्य खुला, ठीक वैसे ही इसने अवनति के बीज का भी वपन कर दिया था। राजकीय उपदेशकों की धर्मप्रचारिणी मंडलियाँ और उनके अनुयायियों ने गौतम के सिद्धांतों का प्रचार गंगा-तट से लेकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों, मध्य एशिया की मरुभूमि और सिकंदरिया के बाजार तक

---

१ उद्धृत ग्रंथ में ही, पृष्ठ ५६।

२ वही, पृष्ठ ५५।

३ उद्धृत स्थल में ही।

किया[१]। ज्यों ही भारतीय बौद्धधर्म विदेश की ओर बढ़ा त्यों ही उसका परिवर्तित होना आवश्यक हो गया। यद्यपि उसके विकास की अधिकांश बातें अज्ञात हैं तथापि विदेशी प्रभाव से होनेवाला परिवर्तन साफ लक्षित होता है[२]।"

"ईसवी सन् की प्रथम दो वा तीन शताब्दियों के अधिकांश में बौद्धधर्म का जो परिवर्तन हुआ वह भारत के और संसार के इतिहास में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना है कि थोड़ा-बहुत विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है[३]।" "आदिम बौद्धधर्म, जिसका निरूपण संवादों में हुआ है और जिन संवादों का सुंदर अनुवाद प्रोफेसर र्‌हीस डेविड्स ने किया है, वह भारतीय भावों पर आश्रित भारत की ही उपज था[४]।" "कनिष्क की राज-सभा के शिल्पियों ने जिस धार्मिक संप्रदाय का प्रदर्शन अपनी उत्तम कला के द्वारा किया है वह बहुत-कुछ विदेशी ही रही होगी[५]।" "जब अंकुरित ईसाई-धर्म

---

१ उद्धृत ग्रंथ में ही, पृष्ठ १२२।

२ उद्धृत स्थल पर ही।

३ उद्धृत स्थल पर ही।

४ उद्धृत स्थल पर ही।

५ उद्धृत स्थल पर ही।

और संबर्धित बौद्धधर्म दोनों ही अपने चतुर्दिक फैले हुए प्रतिमा-पूजन (Paganism) से प्रभावित होने लगे तो इनका संमिलन एशिया और मिश्र के परिषदों एवं बाजारों में हुआ[१]।" "ऐसी परिस्थिति में बौद्धधर्म अपने प्राचीन भारतीय रूप से एक व्यावहारिक नवीन धर्म के रूप में परिवर्तित हो गया। विशेषतया जिन भारतीय भावों के आधार पर इसकी नींव डाली गई थी वे अपेक्षाकृत घोरतर अंधकार में विलीन हो गए और नवीन आदर्श आ उपस्थित हुए[२]।" "यों तो प्रत्यक्ष-रूप से धर्मशास्त्र को प्रामाण्य मानने के संबंध में कहीं भी कोई विवाद नहीं था, पर प्रत्येक देश के निवासियों का बौद्धधर्म सदा से शास्त्रीय धर्म से भिन्न ही रहा है[3]।" "दार्शनिक मत एवं

---

१ उद्धृत ग्रंथ में ही, पृष्ठ १२४।

२ उद्धृत स्थल में ही।

३ उद्धृत ग्रंथ में ही, पृष्ठ १२५। मिलाओ सांडर्स : Buddhism in the Modern World, पृष्ठ ४२ ; "बौद्ध-धर्म स्वीकार करनेवालों की एक बहुत बड़ी संख्या उक्त धर्म के वास्तविक सिद्धांतों और व्यवहारों से बहुत दूर भटकती रही। शास्त्रीय बौद्धधर्म बौद्धों का एक प्रकार से (ईसाइयों का) प्राचीन धर्मशास्त्र (Old Testament) समझा जा सकता है।"

धर्म दोनों रूपों में बौद्धधर्म ने विदेशी लोगों की इतनी तुष्टि की कि कालांतर में यह भारत से करीब-करीब उठ ही गया, पर विदेशों में इसने नवीन जीवन धारण कर लिया[१]।" "किसी भी देश में प्रकाश्य रूप से बौद्धमत ग्रहण करनेवाला व्यक्ति अपने को धर्मतः हिंदू कहने का स्वप्न भी नहीं देखेगा[२]।" पर 'अप्रकाश्य, गुप्त अथवा प्रच्छन्न भारतीय बौद्ध' आधुनिक हिंदुओं के बीच अब भी पाए जाते हैं[३]।

बौद्धधर्म के इस रूप-परिवर्तन का कारण, मूल बौद्ध-धर्म के तत्त्वों का हिंदू-धर्म की शाखाओं में लीन हो जाना है। यह बात निम्नलिखित प्रकरण से प्रकट होगी।

§ ३ पश्चात्कालीन बौद्धधर्म (छद्म-बौद्धों और प्रच्छन्न-बौद्धों का धर्म)।

आदिम बौद्धधर्म की, जो यथार्थ में हिंदू-धर्म था, विदेशियों के मतावलंबन से वस्तुतः समाप्ति हो गई। परवर्ती बौद्धधर्म में विविध संप्रदायों का विकास हुआ।

---

१ विंसेंट स्मिथ : उद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ ५२।

२ उद्धृत स्थल।

३ उद्धृत स्थल, (पाद-टिप्पणी)।

इसका कारण यह था कि बौद्धधर्म में अनार्य विदेशी अपने धर्मों के तत्त्वों अर्थात् नास्तिकवाद, शून्यवाद का प्रवेश करने लगे[1]। ईसाई पंथ भी लिंगपूजा, इंद्रजाल,

---

१ मिलाओ सैंडर सोमा करोसी : Different systems of Buddhism, from Tibetan anthorities ; डेविड : Buddhism of the Buddha and Modernist Buddhism.

बुद्ध के आरंभिक अनुयायियों की धर्म-प्रचारिणी मंडली के कार्य के फल-स्वरूप विदेशियों ने बौद्ध-मत ग्रहण किया था। बौद्धधर्म-प्रचारिणी मंडलियों के समस्त संसार में फैलने के संबंध में देखो हॉम्बो : 'Traces of Buddhism in Norway before the introduction of Christianism' (पेरिस) :—अल्फोंस जर्मेन : 'Buddhism in ancient Mexico, according to recent discoveries' (पेरिस) :—रैनन : Life of Jesus (पेरिस)। "कुछ समय के लिए बेबीलोन बौद्धधर्म का वास्तविक प्रतिबिंब हो गया था। बूद्रास्प (बोधिसत्त्व) नामक एक प्रसिद्ध चैल्डियन (Chaldean) विद्वान् हो गया है जो सैबेइज्म (वपतिस्मा=Baptism) का प्रवर्तक था।"—रैनन का Jesus, अध्याय ६। ईसाइयों के जोसेफाट साधु और अरबों के यूदासफ बोधिसत्त्व ही हैं। [मिलाओ दमिस्क के जॉन की लिखी हुई बरलाम (Barlaam) और जोसेफाट (Josephat) की कहानी]। मार्को पोलो कहता है कि भारत से बाहर मूर्तिपूजा का प्रचार एवं

जादूगरी, प्रेतपूजा आदि को साथ लेकर बौद्धधर्म[२] में प्रविष्ट हो गए[3]। इस छद्म-बौद्धधर्म अर्थात् कल्पित बौद्धधर्म की और बुद्ध के हिंदू-पूजन अर्थात् इस देश के वास्तविक बौद्धधर्म से मुठभेड़ हुई। छद्म-बौद्ध मूर्तियों

आरंभ बौद्धधर्म द्वारा ही हुआ है। (Travels, पुस्तक ३, अध्याय) १५। मिलाओ मूर्तियों के लिए मुसलमानी शब्द 'बुत' और बौद्ध-मंदिरों के लिए 'बुतकादो' (पगोदा ')। ये दोनों बुद्ध के मुसलमानी नाम 'बुत' से निकले हैं। (देखो, प्रिंसेप : Indian Antiquities, भाग २, पृष्ठ २२९)। इस संबंध में यह बात उल्लेखनीय है कि यूनानी वैद्यकशास्त्र का 'थेरापिउटिक्स' (Therapeutics) शब्द थेरा नामक बौद्धधर्म-प्रचारिणी मंडलियों से निकला है (थेरापुत्त या स्थिरपुत्र अर्थात् स्थिर या स्थविर,—संप्रदाय के वयोवृद्ध—के उत्तराधिकारी) ये लोग व्रण-चिकित्सा में बड़े निपुण थे।

२ मिलाओ हक का Travels in Tibet, Tartary and Mongolia, भाग २, अध्याय २ (विशेपतया चांकापा का जीवन-चरित्र)।

३ मिलाओ नरीमैन : Buddhist Parallels to Parsi 'humata—hukhta—huvarshta'—(इंडियन ऐंटीक्वेरी में)। मॉनियर विलियम्स : Buddhism, पृष्ठ ३७३ (टिप्पणी) ;—(बौद्धधर्म में लिंगपूजक संप्रदाय के लिए)।

को ऐसी बलि देने लगे जिसे हिंदू लोग गर्हित और अपने मंदिरों को अपवित्र करनेवाली समझते हैं अर्थात् शूकर-मज्जा, मेष-मज्जा, शूकर-मांस, गो-मांस, पका हुआ चावल आदि। वे झगड़ बैठते कि बुद्ध मांस का व्यवहार करते थे, इसलिए पूजा में उनकी मूर्तियों को मांस की बलि दी जा सकती है[1]। पर बौद्ध-धर्मशास्त्रों में कहीं भी इस कथन का प्रामाण्य-समर्थन नहीं मिल सकता—केवल इसके अतिरिक्त कि उनकी मृत्यु सूखा शूकर-मार्दव खाने

---

१ मांस-भक्षण और कुकर्म का कलंक देवदत्त ने बुद्ध के ऊपर झूठ-मूठ ही लगा दिया था। वह बुद्ध का एक शिष्य था और उसने अपने गुरु के प्राण पर भी आघात करने की चेष्टाएँ की थी। किंतु इतने पर भी बुद्ध सदा उसे क्षमा कर दिया करते थे और उसे अपने साथ ही रखते भी थे। निस्संदेह, जिस ओर से मनुष्य एकदम निश्चिंत रहता है उसी ओर से उसपर घोर आपत्ति आती है। बुद्ध को भी सांसारिक क्लेश भोगने पड़े थे। [देखो साइकेज : Notes on Ancient India, (रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल, मई, १८४१) ;—नाइटन : History of Ceylon, पृष्ठ ७१ (पाद-टिप्पणी) ;—फाहियान और ह्वांच्वांग के यात्रा-विवरण ;—मिलाओ बील का Buddhist Records of the Western World, भाग २, पृष्ठ ८ से]।

से हुई थी[१]। परंतु शूकर-मार्दव का अक्षरार्थ है—'शूकर के मांस की भाँति मुलायम'। यह गोबरछत्ते (छत्रक) के पौधे का नाम है। इसका अर्थ शूकर का मांस नहीं है, जैसा लोग भ्रमवश समझते हैं[२]। इस विषय पर विचार करने के लिए 'सूखा' शब्द बड़े महत्त्व का है। शूकर का सूखा मांस कोई वस्तु ही नहीं है, पर गोबरछत्ता (छत्रक), जो बरसात में पैदा होता है, सालभर तक उपयोग में लाने के लिए सुखाकर रख लिया जाता है। बुद्ध वसंतऋतु में मरे थे। इस ऋतु में सूखा ही गोबरछत्ता (छत्रक) प्राप्त हो सकता था। अतः यह स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु सूखे गोबरछत्ते (छत्रक) के विषाक्त प्रभाव से हुई; और उनकी मृत्यु के लक्षण भी सचमुच वे ही थे जो गोबरछत्ते

---

१ महापरिनिर्वाण सूत्र : अध्याय ४,—§ १७ से § २२ मिलाओ र्‌हीस डेविड्स : Buddhist Suttas, पृष्ठ ७१।

२ मिलाओ न्यूमैन : Die Raden Gotama Buddho's etc ;—नरीमैन का Preface to Tiel's Religion of the Iranian People ;—शीलाचार का Catachism ;—बरेली के खुशीलाल शास्त्री का बुद्धास्तिकता-विचार। 'शूकर' का अर्थ है सुअर और 'मार्दव' (मृदु से) का अर्थ है मुलायम।

(छत्रक) के विष के कारण होनेवाली मृत्यु में होते हैं[१]। बुद्ध शुद्धोदन (उनके पिता) के घर में जन्मे और पाले-पोसे गए थे, जिन्हें यह उपाधि शुद्ध भोजन का व्यवहार करने से प्राप्त हुई थी[२]। बुद्ध ने आजीवन पशुवध एवं मांसभक्षण के विरुद्ध लोगों को शिक्षा दी थी[३], अतः उनका मांस खाना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता।

---

१ रखे हुए गोबरछत्ते (छत्रक) के विषाक्त प्रभाव के लिए देखो लॉरेंड : Health and Longevity through Rational Diet, पृष्ठ २४१-२४६।

२ शुद्धोदन वस्तुतः नाम नहीं है, यह एक उपाधि है जो जनता द्वारा भोजन-विषयक विशेषता के कारण दी गई थी। भविष्य-पुराण (३-८३-११६) उक्त बात का वर्णन इस प्रकार करता है :— "शुद्धोदन (भोजन की शुद्धता के गुण) के कारण उनके यहाँ स्वयं भगवान् ने पुत्र-रूप में जन्म धारण किया।" (मिलाओ हेमाद्रि, व्रतखंड, अध्याय १५ भी)। 'शुद्धोदन' दिव्यता के कारण मिली हुई उपाधि,— इस संबंध में देखो अशोकावदान (प्राइलरकी का फ्रेंच अनुवाद, पृष्ठ २५२) ; मिलाओ दिव्यावदान (कावेल और नील द्वारा रोमन भाषा में अनूदित) भी।

३ बौद्धधर्म के मांस-भक्षण के संबंध में देखो बिलिंग का Travels, भाग १, पृष्ठ १९ ; और मिलाओ हॉपकिंस : 'The Buddhist rule against eating meat' (अमेरिकन

यह ठीक है कि हिंदू-शास्त्र इस बात की आज्ञा देते हैं कि बुद्ध की पूजा में 'घृतौदन' का व्यवहार किया जाय, परंतु इस शब्द का अक्षरार्थ है 'घी के साथ पकाया हुआ अन्न'। यह एक प्रकार की मीठी पूड़ी का नाम है, जो घी और मैदे से तैयार की जाती है और जिसे भारत की बोल-चाल की भाषा में 'घीओद' भी कहते हैं। परवर्ती बौद्धों ने इस शब्द का अर्थ 'घी मिश्रित भात' समझा। जिसे हिंदू लोग अपवित्र करनेवाली वस्तु समझते हैं, पर 'घीओद' पवित्र समझा जाता है। अब भी

ओरिएंटल सोसाइटी का जरनल, भाग २७, पृष्ठ ४५७ और आगे)।

१ मेरुतंत्र, अवतार-प्रकरण, अध्याय ३६।

२ बुद्ध अपनी भिक्षा में इस भोजन को ग्रहण कर लेते थे। बुद्ध के प्रांत विहार में पहले भी और अब भी यह भोजन एक विशिष्ट भोजन समझा जाता है। यह महापरिनिर्वाण सूत्र का मिष्टान्न है। चौथे अध्याय का §§ १७ और १८ : योरोपियन विद्वानों ने इसका अशुद्ध अनुवाद 'मीठा चावल' किया है (मिलाओ Buddhist Suttas—र्‌हीस डेविड्स)। इसकी एक क़िस्म मालपुआ भी कहलाती है।

३ इस भूल का कारण यह है कि 'ओदन' शब्द का सामान्य अर्थ भोज्य पदार्थ और विशेष अर्थ चावल है। इसी प्रकार 'मिष्टान्न' के अन्न शब्द को भी समझना चाहिए।

बौद्ध बुद्ध की मूर्तियों के समक्ष पकाए हुए चावलों की वलि देते हुए देखे जा सकते हैं।

अंततोगत्वा छद्म-बौद्धों द्वारा बुद्ध के मंदिरों को यह सांप्रदायिक अपवित्रता देखकर हिंदुओं ने उन मंदिरों का परित्याग कर दिया एवं अपने लिए नवीन मंदिरों का निर्माण किया, और कदाचित् छद्म-बौद्ध इन नए मंदिरों पर भी धावा करें, इसलिए उन्होंने मंदिरों में प्रतिष्ठित बुद्ध की प्रतिमाओं के कल्पित नाम रखे अर्थात् विष्णु, राम, भैरव, यम, शिव आदि। ये नाम हिंदू-देवकुल से लिए गए थे और इसे छद्म-बौद्ध नहीं मानते थे[1]। इस

---

[1] आधुनिक काल तक उनकी यही अवस्था जारी है, जैसा कि श्रीयुत राखालदास बनर्जी (महेंजोदारो ख्याति-प्राप्त पुरातत्त्ववेत्ता) ने लक्षित किया है। बुद्धगया में बोधितरु के नीचे हिंदू-यात्री अपनी अत्यंत प्राचीन प्रथा के अनुसार पितरों का श्राद्ध करते हैं और पिंडदान देते हैं। जब बौद्ध-यात्रियों के आगमन का समय आता है तब वे लोग अपनी पूजा पास के दूसरे वृक्ष के नीचे करने लगते हैं। उस स्थान पर वे लोग बुद्ध की मूर्तियों का स्थापन करते हैं और उन्हें हिंदू-देवताओं के नाम से पुकारते हैं। इसका कारण बौद्धों द्वारा मंदिर का दूषित होना ही है, क्योंकि वे लोग बोधितरु की पूजा भी अपने ही ढंग से करते हैं। हिंदू-कर्मकांड के

प्रकार प्रच्छन्न-बौद्धधर्म अर्थात् रूपांतर से बुद्ध-पूजन का आरंभ हुआ। परंतु ये प्रतिमाएँ भी सरलतापूर्वक बुद्ध की ही प्रतिमाएँ लक्षित हो गईं और छद्म-बौद्ध अपने बुद्ध-पूजन का अधिकार दिखाते हुए इन नए मंदिरों में भी घुस आए तथा उन्होंने अपनी पूजा के दूषित प्रकार से हिंदुओं के निमित्त उन्हें भी अपवित्र कर डाला। इन्हीं करतूतों के कारण शशांक, पुष्यमित्र तथा अन्य भारतीय हिंदू-राजाओं ने उन बौद्धों को बाधा पहुँचाई[1]। हिंदुओं द्वारा की जानेवाली छद्म-बौद्धों की राजवर्ग-संमत बाधा, पुरोहिती बहिष्कार एवं सैद्धांतिक आक्रमणों के साथ-ही-साथ तब समाप्ति हुई जब

अनुसार शूकर-मांस अथवा मेष-मज्जा अपवित्र पदार्थ हैं। आर्येतर बौद्ध बुद्धगया-मंदिर के भीतर शूकर-मज्जा से मिली हुई मोम-बत्तियाँ जलाते हैं और मेष-मज्जा-मिश्रित चावल चढ़ाते हैं। इसी कारण हिंदू-लोग मंदिर के भीतर मूर्ति की पूजा करने से हिचकिचाते हैं।

१ हिंदुओं द्वारा बौद्धों की बाधा का वास्तविक कारण यही था। अन्यथा धर्म के निमित्त हिंदू किसी को कभी भी बाधा नहीं पहुँचाते। धार्मिक बाधा हिंदुओं के लिए अप्रसिद्ध बात है। मुसलमान हिंदुओं के घोर धार्मिक शत्रु हैं, तथापि हिंदू मुस्लिम-साधुओं का संमान एवं पूजन करते हैं।

हिंदू वौद्धधर्म को स्वधर्म-विरोधी मानने लगे और अंत में जब यह क्रमशः अपनी जन्मभूमि भारत से पूर्णरूपेण लुप्त हो गया[1]। यह विभेद तब तक बढ़ता ही गया जब तक यह इस अन्वेषण द्वारा असाध्य नहीं हो गया कि स्वयं बुद्ध ने ही वेद-विरुद्ध नास्तिकवादी सिद्धांत का धर्मोपदेश किया था[2]। प्रच्छन्न-बुद्ध ज्यों-के-त्यों बने रहे

---

१ इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि हिंदुओं के लिए कभी बुद्ध-पूजन का निषेध किया गया है। जो वचन हिंदुओं को जैन-मंदिरों में जाने से मना करता है वह भी कल्पित है, क्योंकि इसका पता किसी प्रामाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता। ऐसे वचन भी मिलते हैं जिनमें बुद्ध को जिनसुत (जिन का पुत्र) कहा गया है, पर ये ही वचन हिंदुओं को बुद्ध की पूजा करने का आदेश करते हैं। देखो भागवतपुराण, १-३-२४ से २९ ;—गरुड़पुराण, १-२-१२।

२ देखो शिवपुराण: रुद्रसंहिता, कुमारखंड, ९-२५ ; ललितविस्तर : अध्याय १२। यह बात संभव जान पड़ती है कि अन्य मननशील व्यक्तियों की भाँति बुद्ध ने भी अपने जीवन के मध्य भाग में शून्यवादी विचारों को ग्रहण कर लिया हो और वे शून्यवादी विचारों का उपदेश भी देने लगे हों। हिंदू लोग इस बात की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि भगवान् के नवें अवतार (बुद्ध) का कार्य नास्तिकों को शून्यवाद के

अर्थात् बुद्ध की पूजा हिंदू अनेक रूपांतरों से करते ही रहे। उन्होंने बुद्ध की पूजा के लिए उन रूपांतरों को प्रचलित रखा और कभी भी प्रकाश्य एवं प्रकट रूप में बुद्ध की पूजा नहीं प्रचलित की। फल-स्वरूप कालांतर में बुद्ध के उन उपासकों और सामान्यतः हिंदुओं के लिए बुद्ध की पूजा एक विस्मृत वस्तु हो गई। इस प्रकार प्रच्छन्न बौद्धधर्म अथवा हिंदुओं द्वारा वेशांतर से बुद्ध-पूजन यद्यपि प्रारंभिक उपासकों के लिए सुबोध था, पर तुरत ही उनके अनुयायियों या उत्तराधिकारियों के लिए दुर्बोध हो गया। उन्होंने बुद्ध की प्रच्छन्न पूजा को ही एक स्वतंत्र एवं सत्यपूजन जान लिया और बुद्ध का पूजन एकदम त्याग दिया। तभी से अरूपांतरित बुद्ध-प्रतिमाओं की पूजा कभी भी हिंदुओं में प्रचलित नहीं हुई। इस प्रकार बौद्धधर्म अलक्षित रूप से सनातनी हिंदू-धर्म में पुनः

नूतन दार्शनिक विचारों में संलग्न करके उनसे वेदों को बचाना था। देखो विष्णुपुराण, ३-१८-१५ से ; नारद-पंचरात्र, ४-३-१५६ से ; तंत्रसार, अध्याय ४ (विष्णुस्तोत्र का नवाँ पद्य) ; भागवत-पुराण, १-३-२४ ; ६-८-१७ ; आदि। (मिलाओ देवीभागवत, ४-१० ; मत्स्यपुराण २४-३७)।

विलीन हो गया, और हिंदू-धर्म की एक शाखा नहीं रह गया[1]।

प्रच्छन्न-बौद्धधर्म के चिह्न बंगाल, दक्षिण और नैपाल तथा तिब्बत, बर्मा, जावा और चीन में आज दिन भी मिल सकते हैं[2]। धर्म-ठाकुर की पूजा प्रच्छन्न-हिंदू-बौद्ध-धर्म ही है[3]। वैष्णव-धर्म हिंदू-धर्म एवं बौद्धधर्म का संमिश्रण है। हिंदू-वैष्णव विष्णु-पूजा एवं दशावतार-

---

१ मिलाओ " बौद्धधर्म के लोप की अत्यंत संभाव्य व्याख्या यह है कि यह क्रमशः ब्राह्मणों के वर्ग-धर्म में लीन हो गया। " —Cambridge History of India, भाग १ पृष्ठ ५५।

२ भारत में बौद्धधर्म की अवस्थिति और 'धर्म-पूजा' के संबंध में देखो भारत की मनुष्य-गणना, १९०१, भाग १, खंड १, पृष्ठ २६९-२७१। देखो हरप्रसाद शास्त्री : Buddhism in Bengal ;—नरेंद्रनाथ वसु : Modern Buddhism and its Followers in Orissa ;—स्टेवेंसन : On the Intermixture of Buddhism with Brahmanism in the Religion of the Hindus of the Dekkan ;—वर्गेस : The Ritual of the Temple of Rameshwaram in Southern India.

३ 'धर्म' शब्द का अर्थ बुद्ध और उनका मत है। मिलाओ वायुपुराण, २-४९-२६ ;—ललितविस्तर, अध्याय ७ ;—शेरिंग का बनारस, पृष्ठ ८५ से।

पूजा के साथ-साथ बुद्ध की भी पूजा करते हैं[1]। नैपाल-माहात्म्य कहता है कि शिव की पूजा करना बुद्ध की पूजा करना है। "नैपाल में हिंदू-धर्म एवं बौद्धधर्म में इतना निकट-संबंध है, और एक धर्म दूसरे धर्म में शनैः-शनैः ऐसा मिल-जुल गया है कि दोनों के बीच का अंतर बतलाना कठिन है। यह एक सामान्य बात है कि बौद्ध-मंदिरों के अंतर्गत हिंदू-देवताओं की प्रतिमा-प्रतिष्ठा देखी जाती है, ठीक इसी प्रकार बुद्ध की मूर्तियाँ और उनकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा शुद्ध हिंदू-मंदिरों में भी बराबर देखी जा सकती है। महाकाल के मंदिर में इस बात का एक बढ़िया उदाहरण पाया जाता है[2]।" "महाकाल को, जिन्हें बौद्ध वज्रपाणि का रूप मानते हैं, हिंदू लोग शिव का अवतार मानकर पूजते हैं[3]।" तिब्बती बौद्धों का एक

---

१ भारत की मनुष्य-गणना, १९०१, भाग १, खंड १, पृष्ठ ३६१। बुद्ध-सहित दशावतारों की पूजा कूचविहार, कश्मीर, नैपाल और भारत के अनेक अन्यान्य स्थानों में होती है।

२ ओल्डफील्ड : Sketches from Nipal, भाग २, पृष्ठ २८४ और आगे।

३ वही;—पृष्ठ १७६। मिलाओ हॉगसन के निबंध, (पृष्ठ १२६, १८७४ ई० का संस्करण):—"यथार्थ में बहुत-से

संप्रदाय अपने अवलोकित को हिंदू-देवता शिव से और उनकी सहवासनी को हिंदू-देवी तारा से मिलता-जुलता पाता है[१]। जावा के वराबुदुर नामक स्थान में वौद्ध-मूर्त्तियों के साथ-ही-साथ हिंदू-देवकुल के देवताओं की मूर्तियाँ भी पाई जाती हैं। चीन देश की बुद्ध-पूजा हिंदू-पूजन-विधि से बहुत मिलती-जुलती है। पेकिन के बौद्ध-मंदिरों की दीवारों पर संस्कृत के लेख एवं भारतीय पुराणों की कितनी ही बातें खुदी हुई हैं[२]। वर्मा-साम्राज्य की प्राचीन

देवलिंग, विशेषतः शिवलिंग, निश्चयात्मक रूप से शुद्ध बुद्धलिंग हैं।……चैत्य का लिंगम् में रूपांतर और उसकी पूजा नैपाल के असंख्य स्थानों में देखी जा सकती है।" देखो डा. ब्लोच : Notes on Bodh-Gaya (Archaeological Survey of India, 1908-9 ; पृष्ठ १४९)।

१ तारानाथ : History of Buddhism, अध्याय १०।

२ कपूर्थला के महाराज जगज्जीतसिंह : Travels in China, etc., पृष्ठ २४ और आगे। देखो क्राफर्ड का यह निरूपण कि जावा की सभी बड़ी-बड़ी बौद्ध-मूर्तियों और स्तूपों में शुद्ध भारतीय चिह्न पाए जाते हैं। वारो ने भी इसी प्रकार का निरूपण अपनी चीन की यात्रा में किया है। (मिलाओ Oriental Quarterly Magazine, संख्या १६, पृष्ठ २१८-२२२)।

राजधानी 'टैगाँग' में बुद्ध की ऐसी मूर्तियाँ पाई हैं जिन-पर देवनागरी में लेख खुदे हुए हैं[1]। असंख्य बौद्ध-भग्नावशेषों को पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं तत्तद्देशनिवासियों ने भ्रमवश ब्राह्मणकाल का मान लिया है[2]। "जगन्नाथ पुरी के मंदिर में जो मूर्ति है वह परंपरा से बुद्धावतार की मूर्ति मानी जाती है। वस्तुतः तुलसीदासजी अपनी छप्पय रामायण में जगन्नाथजी को नवाँ अवतार बतलाते हैं, जिससे जगन्नाथ और बुद्ध एक ही जान पड़ते हैं[3]।" बुद्धगया (और भारतवर्ष भर) में यह

---

१ देखो बर्न का निबंध, बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में, भाग ५, पृष्ठ १५७ और आगे।

२ देखो हॉगसन के निबंध, पृष्ठ ६७।

३ बुद्धगया मंदिर के प्रश्न पर श्रीयुत राजेंद्रप्रसाद की रिपोर्ट—§ B.

जगन्नाथ-मंदिर भ्रमवश लिंग-मूलक माना जाता है, क्योंकि इसमें की मूर्तियाँ नग्न हैं। वस्तुतः बात यह है कि प्राचीनकाल में, जब विद्युद्ग्राहक-यंत्र (Lightening-conductor) नहीं ज्ञात था, उस समय तक्षण-कला की पुस्तकों में विशाल मंदिरों की दीवारों पर अश्लील मूर्तियाँ निर्मित करने का आदेश किया गया था। यह युक्ति वज्रपात से मंदिरों को बचाने के लिए थी।

देखा जा सकता है कि वहाँ के निवासी बुद्ध की मूर्तियों को ऐसे नामों से पुकारते हैं जो नाम हिंदू-देवकुल से लिए गए हैं। एक नैपाली बौद्ध जिसने उक्त स्थान की यात्रा की थी लिखता है :—" महाबुद्ध के इस मंदिर को ब्राह्मण (हिंदू) जगतनाथ का मंदिर कहते हैं और शाक्य-सिंह की मूर्ति का नाम महामुनि बतलाते हैं। वे लोग तीन लोकनाथों में से एक को महादेव, दूसरे को पार्वती और तीसरे को उनका पुत्र कहते हैं। हिंदू लोग सात बुद्धों में से छः को पंचपांडव और उनकी स्त्री कहते हैं। वे वज्रसत्त्व की मूर्ति को महाब्रह्म कहते हैं। बौद्धधर्म के इस विशाल मंदिर में इस प्रकार हिंदू-पूजा की प्रतिष्ठा हो गई है और हिंदू लोग अज्ञानता से बुद्ध की मूर्तियों के समक्ष सिर नवाते हैं[1]।"

लोगों का विश्वास था कि वज्र के देवता (वज्रिन्) अश्लील वस्तुओं को नहीं स्पर्श करते, क्योंकि वे शुद्ध जलवाले आचारवान् व्यक्ति हैं।

१ हॉगसन के निबंध, पृष्ठ १३६, १८७४ का संस्करण। बौद्धों की प्रधानता के युग में भी बुद्धगया में ब्राह्मण-ढंग की बुद्ध-पूजा के प्रचलन के संबंध में देखो डा. ब्लोच का Notes on Bodh-Gaya, § ३। मिलाओ हेमिल्टन का Ruins of

यह बात उल्लेखनीय है (और यह एक ऐसी बात है जो इस विषय का निर्णय करती है) कि बुद्ध की सभी मूर्तियों की आकृति और मुद्रा हिंदू-प्रतिमा-प्रतिष्ठा की पद्धति से मिलती है। इन मूर्तियों में से अधिकांश के मस्तक पर तिलक का चिह्न पाया जाता है और कुछ मूर्तियों के वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत भी पड़ा हुआ देखा जाता है। ये चिह्न स्वयं उन्हीं पाषाणों में खुदे हुए हैं[1]। आधुनिक अन्वेषणों के आधार पर कुछ विद्वान् यह भी मानने लगे

Buddha-Gaya, १८२३ का संस्करण। इस पुस्तक में ग्रंथकर्ता ने लिखा है कि १८९५ में हिंदुओं ने बुद्ध के विशाल मंदिर पर अपना स्वत्वाधिकार प्राप्त कर लिया था और उक्त समय के कुछ काल पश्चात् महाधर्मराज द्वारा तमसाद्वीप-महाअमरापुरा-पाङ्गू से भेजी हुई धर्म-प्रचारक मंडली ने उसे पूर्णतया हिंदुओं के हाथों में पाया था। "हिंदू-संन्यासियों ने कोई पाँच शताब्दियों से भी अधिक समय से इसपर स्वत्वाधिकार प्राप्त कर लिया है।" (१८९४ के बुद्धगयावाले मुकदमे में बंगाल सरकार के कागजात, पृष्ठ ३२ और आगे)।

१ देखो अंत में (चित्र और उनका विवरण)। प्रोफेसर जे. एन. समद्दार ने अपने बुद्धगया-मंदिरवाले लेख में लिखा है कि वैद्यनाथ में एक मूर्ति ऐसी है जिसमें यज्ञोपवीत का चिह्न खुदा हुआ है।

हैं कि वर्तमान हिंदू-धर्म वास्तविक हिंदू-धर्म (शुद्ध वैदिक धर्म) ही नहीं है, वरन् प्रच्छन्न-बौद्धधर्म है[1], क्योंकि इस धर्म के अंतिम सुधारक श्रीमच्छंकराचार्य स्वयं प्रच्छन्न-बौद्ध थे[2]। हिंदू-धर्म की मूर्ति-पूजा भी प्रच्छन्न-बौद्धधर्म का ही अवशिष्ट रूप समझी जाती है, क्योंकि मूर्ति-पूजा वेदों की प्रवृत्ति से बाह्य है[3]। जो वचन हिंदुओं को बुद्ध की पूजा

---

१ यह हरप्रसाद शास्त्री का विचार है (इन्हीं की भाँति कुछ विद्वानों ने बौद्धधर्म के अस्पष्ट एवं अज्ञात विषयों को स्पष्ट करने में बहुत-कुछ काम किया है)।

२ पद्मपुराण, सांख्यप्रवचन-भाष्य में विज्ञानभिक्षु द्वारा उद्धृत, १-२२। 'प्रच्छन्न-बुद्ध' का अर्थ वही है जो गुप्त-बौद्ध (Crypto-Buddhist) का। इसमें कोई संदेह नहीं कि शंकर के वेदांत-दर्शन के मायावाद एवं मुक्ति शब्द और बौद्धधर्म के शून्यवाद एवं निर्वाण शब्द एक ही हैं, केवल नामों की भिन्नता है। शंकर के अनुयायी अर्थात् संन्यासी पुराकालीन बौद्ध-श्रमणों से बहुत मिलते-जुलते हैं। मिलाओ ला वेली पासिन: Vedanta and Buddhism। सेन: Buddhism and Vedanta,—a parallel. (बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी का जरनल, १९१८, भाग ४, पृष्ठ १४१ से) भी।

३ वास्तविक बात यह जान पड़ती है कि भारत में मूर्ति-पूजा का उदय वैदिक काल के अनंतर और बुद्धावतार से पूर्व हुआ था।

करने का आदेश करते हैं वे स्वल्प परिमाण में पाए जाते हैं, इससे कुछ लोग उन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। यथार्थ बात यह है कि ये वचन किसी परिपूर्ण पूजा-पद्धति के अंश हैं, जिसका संशोधन हिंदुओं ने अपने धर्मशास्त्रों द्वारा उस समय किया था जब उन्होंने नाम-मात्र के लिए बौद्ध-संप्रदाय का बहिष्कार किया था।

चाहे जो हो, विगत शताब्दी में विद्वानों के धैर्य-संयुक्त अनुसंधानों द्वारा इस विषय के प्रचुर प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि हिंदू ही बुद्ध के वास्तविक पूजक थे और बुद्ध की प्रकाश्य पूजा का परित्याग उन्होंने अपनी ओर से नहीं किया था, वरन् इसका कारण विदेशियों के वे दोषपूर्ण कृत्य थे जिन्हें विदेशियों ने ही बौद्धधर्म में संमिलित कर दिया था। हिंदुओं ने बुद्ध का नहीं, वरन् बौद्धों का बहिष्कार किया था।

चित्र

चित्र १



वराभय

बुद्ध अभयदान देते हुए *

इंडियन म्यूज़ियम (Br. ९—विहार) से

* इसका तात्पर्य है वरदान और अभयदान। यह माना जाता है कि वरदान का भाव उस हाथ में है जो गोद में पड़ा हुआ है। हाथ गोद से ऊपर-नीचे भी किया जा सकता है अथवा वैसे ही रखा जा सकता है जैसे चित्र में है। [देखो पृष्ठ २७३]

चित्र १ का विवरण

इस चित्र में बुद्ध की मूर्ति के ललाट पर तिलक और हाथों में वराभयद मुद्रा दोनों हैं। पृष्ठ ४२ और पृष्ठ ४५ (टिप्पणी १) एवं पृष्ठ ७२ और पृष्ठ ७५ (टिप्पणी) पढ़ते हुए इसे सामने रखना चाहिए। तिलक-चिह्न और वराभयद मुद्रा दोनों हिंदुओं की योगसाधना के लक्षण हैं। बुद्ध की मूर्तियों में इसका होना ऐसी प्रतिमाओं का पूजनीय होना प्रमाणित करता है। पूजकों के लिए मस्तक पर तिलक लगाने का आदेश, वही तिलक पूजनीय मूर्ति के मस्तक पर भी लगाने का विधान करता है। बुद्ध स्वयं तिलक लगाते थे, क्योंकि वे अपनी इष्टदेवी (प्रज्ञापारमिता अर्थात् तारा या कुअनयिन) की मूर्ति के मस्तक पर भी वही तिलक लगाते थे। तिलक बुद्ध के उत्तराधिकारी भी लगाते थे। तिलक अवलोकितेश्वर एवं अन्यों की प्रतिमाओं में भी मिलता है। एक प्रकार का तिलक जो मस्तक पर तीन बेड़ी समानांतर रेखाओं के रूप में लगाया जाता है, जिसे हिंदू त्रिपुंड्र कहते हैं और बहुधा लगाते हैं, प्रसिद्ध बौद्धधर्म-प्रचारक बोधिधर्म, असंग आदि की मूर्तियों के मस्तक पर खचित मिलता है (देखो पृष्ठ ७२, टिप्पणी १)। बुद्ध के हिंदू-पूजकों के लिए अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के पत्ते से मिलता-जुलता और पीले चंदन को घिसकर तिलक

लगाने का आदेश है, जो सूत-संहिता के आगे उद्धृत वचन में दिया हुआ है।

किसी देवता की वराभयद मुद्रा हिंदुओं की अपनी एक विशेष भावना है। यह किसी नास्तिक अथवा शून्यवादी मत में नहीं पाई जा सकती, क्योंकि इसमें परमात्मा एवं शंकर, देवदूतों के गण, स्वर्ग, पुनर्जन्म और आत्मा एवं उसकी अमरता की सत्ता के भाव निहित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मानव प्रकृति की रहस्यात्मक शक्ति के द्वारा अपनी आत्मा से संभाषण कर सकता है, और उसके द्वारा मनोवांछित प्राप्त करके सब प्रकार की भीतियों से निर्भय हो सकता है। हिंदुओं की कोई उपासना इष्टदेव की इस मुद्रा के ध्यान के विना परिपूर्ण नहीं मानी जाती।

तिलक और वराभयद मुद्रायुक्त बौद्ध-मूर्तियों की तद्वत् हिंदू-मूर्तियों से तुलना करने पर यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इन सबका कोई एक ही मूल है।

आनुषंगिक स्थल

ऊपरवाला चित्र इंडियन मूजियम के मगध सेक्शन (८००-१२०० ई०), Br. ९, विहार की एक मूर्ति का है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसमें तिलक और वराभयद मुद्रा दोनों साथ ही हैं।

बुद्ध के मस्तक पर तिलक-चिह्न—इस प्रकार की मूर्तियाँ इन स्थानों में देखी जा सकती है :—जावा के वराबुदुर में; यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के बोस्टन म्यूजियम में; बुद्ध-

गया-मंदिर, भारत में ; धर्मपाल के संग्रह, नाहर के संग्रह, और इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में ; लूवर, पेरिस में ; टोकियो और कियोटो के इंपीरियल म्यूजियम, कमाकुर, जापान में ।

मस्तक पर तिलकवाली बुद्ध की तिब्बती और बर्मी मूर्तियों के चित्र के लिए देखो एच. जी. वेल्स का Short Histry of the world, पृष्ठ १५१ और १५२ ; ऐसी ही लंका की मूर्तियों के लिए देखो वुडवर्ड का Pictures of Buddhist Ceylon, मुखचित्र ; ऐसी ही चीनी मूर्तियों के लिए देखो आश्टन का Study of Chinese Sculpture, चित्र,—विशेषतः चित्र ५३ (बुद्ध मैत्रेय के लोक में) ; ऐसी ही जावा की मूर्तियों के लिए देखो कार्लविथ का Java, चित्र, १०, ११, १२, २९, ३३ ; ऐसी ही जापानी मूर्तियों के लिए देखो एम. अनेसकी का Buddhist Art, चित्र ११, १२, १४ ; ऐसी ही मध्य-एशिया की मूर्तियों के लिए देखो फाउचर का Beginnings of Buddhist Art, चित्र ११,१२ ।

बुद्ध की इष्टदेवी (प्रज्ञापारमिता या तारा या कुअनयिन) के मस्तक पर तिलक-चिह्न—ऐसी मूर्ति इन स्थानों में देखी जा सकती है :—लीडेन म्यूजियम, हालैंड ; यूमोरफोपाउलस और रैफायल कलेक्शन, लंडन ।

उपरिलिखित मूर्तियों के फोटो के लिए देखो कार्लविथ का Java, चित्र-फलक १०२ ; आश्टन का Study of Chinese Sculpture, मुखचित्र और चित्र-फलक ५७ ।

बुद्ध के उत्तराधिकारियों (अवलोकितेश्वर, मंजुश्री आदि) के मस्तक पर तिलक-चिह्न—ऐसी मूर्तियाँ इन स्थानों में देखी जा सकती हैं :—हैवमेयर कलेक्शन, न्यूयार्क, फ्रीयर कलेक्शन, वाशिंगटन, अमेरिका ; लावर, पेरिस; बराबुदुर, जावा।

ऊपर की मूर्तियों के फोटो के लिए देखो आश्टन का Study of Chinese Sculpture, चित्र-फलक २५, २७, ३० ; कार्लेविथ का Java, चित्र-फलक ५९। [पचीस बोधिसत्त्वों के मस्तक पर तिलक के लिए देखो अनेसकी : Buddhist Art, चित्र-फलक ११]।

बौद्ध धर्म-प्रचारकों (असंग आदि) के मस्तक पर तिलक-चिह्न (त्रिपुंड्र)—ऐसी मूर्तियाँ नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया और साइबेरिया में बहुत मिलती हैं। ऐसे ही फोटो उक्त देशों की यात्राओं और कलाओं की पुस्तकों में देखे जा सकते हैं, यद्यपि लेखक उनमें से बहुतों को पहिचान ही नहीं सके हैं। असंग की एक छोटी-सी मूर्ति राय बिहारीलाल मित्र बहादुर, जमींदार, कलकत्ता के स्वागत-गृह में देखी जा सकती है, उन्हीं का एक दूसरा चित्र Toyo Bijutsu Shu, अर्थात् 'प्राचीनकला के चित्र' के भाग २, चित्र-फलक १ में भी देखा जा सकता है। (कोक्कश, टोकियो, जापान)।

बुद्ध की वराभयद मुद्रा—ऐसी मूर्ति इन स्थानों में देखी जा सकती है :—म्यूजियम आफ् फाइन आर्ट्स, बोस्टन, अमेरिका ; बराबुदुर, जावा ; इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, और बुद्धगया-

मंदिर, भारत। (जावा की मूर्तियों की वराभयद मुद्रा के लिए देखो, फाउचर का Beginnings of Buddhist Art, पृष्ठ २५६)।

ऊपर की मूर्तियों के फोटो के लिए देखो कार्लविथ : Java, चित्र-फलक ९, ११, १२, २३, ९५ ; आइटन : Study of Chinese Sculpture चित्र, ४२ (a)। भारत की यात्रा करने-वालों ने बुद्ध का जो फोटो लिया है, उनमें अधिकांश फोटो इसी प्रकार के हैं। दशावतार के हिंदू-चित्रों में बुद्ध सदा वराभयद मुद्रा में ही दिखाए जाते हैं।

हिंदू-देवता के ललाट पर तिलक-चिह्न और करों में वराभयद मुद्रा—ऐसी प्रतिमाएँ भारत-भर के हिंदू-मंदिरों में देखी जा सकती हैं। ऐसे चित्र सभी हिंदुओं के घर में टाँगे जाते हैं।

आज तक सनातनी हिंदू बराबर अपने मस्तक पर और अपनी देवमूर्ति के ललाट पर तिलक लगाते हैं। जब वे देवताओं का ध्यान करते हैं तो देवता को वराभयद मुद्रा में ही समझते हैं।

मूलवचन

तिलक-चिह्न के लिए :—

(क) विशेषतः बुद्ध-पूजन में—

अश्वत्थपत्रसदृशं हरिचन्दनेन
मध्ये ललाटमतिशोभनमादरेण।
बुद्धागमे मुनिवरा यदि संस्कृतश्चे-
न्मृद्धारिणा सततमेव तु धारयेच्च॥

—सूतसंहिता, सूतगीता, ८–२४।

(ख) सामान्यतः हिंदू-पूजन में—

काम्यं नैमित्तिकं नित्यं यत्किञ्चित्कर्म्म नारद ।
वर्णाश्रमाणां तन्नास्ति स्नानान्ते तिलकं विना ॥

—पद्मपुराण, उत्तरकांड ।

वराभयद मुद्रा के लिए :—

(क) विशेषतः बुद्ध की—

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्द्ध्व पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥

—अग्निपुराण, ४९-८ ।

(ख) सामान्यतः हिंदू-देवताओं की—

वरदाभयशूलविषाणधरं
प्रणमामि शिवं शिवकल्पतरुम् ।

—नित्यकर्म, शिवस्तोत्र ६ ।

[शिव शैवों के वैसे ही देव हैं जैसे बुद्ध बौद्धों के] ।

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्य्यरत्नाकरी ।
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ॥

—शंकर का अन्नपूर्णादेवी-स्तोत्र, १ ।

[यह देवी उसी प्रकार की हैं जैसी बुद्ध की तारा या प्रज्ञा-पारमिता] ।

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥

—गुरुगीता, गुरु-स्तोत्र, ध्यान ।

[यहाँ गुरु देवरूप वर्णित हैं ।]

चित्र ९



यज्ञोपवीत

बुद्ध यज्ञोपवीत पहने हुए

श्रीमैत्रेय (बुद्धगया) द्वारा खचित

सूचना—दोनों छातियाँ इसलिए दिखलाई गई हैं कि रेखा यज्ञोपवीत का निर्देश करे। जहाँ केवल दाहिनी छाती दिखाई जाती है, वहाँ रेखा बाएँ कंधे पर पड़े हुए वस्त्र का निर्देश करती है।

[देखो पृष्ठ २८१]

चित्र २ का विवरण

इस चित्र में बुद्ध के कंधे पर यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है, जो उनकी कुछ मूर्तियों में पाया जाता है। इसे पृष्ठ ४५ (टिप्पणी १) के साथ पढ़ना चाहिए। कंधे पर यज्ञोपवीत शुद्ध हिंदू-रीति है। यह केवल ऊँचे वर्णवालों में है, और निम्न श्रेणीवालों से अपना विभेद प्रदर्शित करने के लिए है। बुद्ध क्षत्रिय थे; अतः एक ऊँचे वर्ण के होने से उनके लिए इसे पहनना आवश्यक था और विशेषतः वैसी दशा में जब वे वर्ण-विभेद को मानते थे (देखो पृष्ठ २०)। इससे यह ज्ञात होता है कि बुद्ध स्वयं हिंदू-धर्म से कभी अलग नहीं हुए; उस समय भी नहीं, जब वे अपने सुधारों का आदेशोपदेश कर रहे थे।

कभी-कभी यह आपत्ति की जाती है कि बुद्ध का उपनयन-संस्कार उनके किसी चरित्र अर्थात् ललितविस्तर आदि में वर्णित नहीं है। इसका केवल यही उत्तर दिया जा सकता है कि रामायण और महाभारत में नायकों के उक्त संस्कार का कोई उल्लेख नहीं है, पर इसमें किंचिन्मात्र संदेह करने का कोई कारण नहीं कि उनका यह संस्कार ही नहीं हुआ था। रामायण के पाठकों को स्मरण होगा कि उन दिनों निम्न श्रेणी की जातियों में उत्पन्न होनेवाले व्यक्ति भी अपने उत्कृष्ट गुणों के कारण यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारी हो जाते थे। जो हनूमान आधे वानर

और आधे मनुष्य के रूप में प्रदर्शित किए जाते हैं उन्हें सब लोग यज्ञोपवीत पहनाते हैं। हिंदुओं द्वारा पूजित इस वीर के चित्रों और मूर्तियों में यज्ञोपवीत का चिह्न देखा जा सकता है। (देखो आनंद-रामायण में हनुमत्कवच के पद्य, जो आगे उद्धृत किए गए हैं)।

बुद्ध-मूर्ति के यज्ञोपवीत के संबंध में कई तर्कपूर्ण शंकाएँ की जा सकती हैं। जैसे—मूर्ति में जो विभाजक रेखा है वह वस्तुतः यज्ञोपवीत की रेखा न होकर वस्त्र की रेखा है; क्योंकि मूर्तियों में बाएँ हाथ का निरीक्षण करने से ज्ञात होगा कि बाएँ कंधे के ऊपर एक कपड़ा डाला गया है, जो छाती को ढकता हुआ इस प्रकार से जाता है जिससे संमुख भाग में उसके अंचल की रेखा ठीक उसी भाँति बने जैसी यज्ञोपवीत की बनती है। ऐसी शंकाएँ उन मूर्तियों द्वारा निर्मूल हो चुकी हैं जिनमें दो विभाजक रेखाएँ हैं। एक रेखा वस्त्र के किनारे का प्रदर्शन करती है और दूसरी गले के यज्ञोपवीत का। इसके अतिरिक्त इन मूर्तियों में से कई में एक छाती वस्त्रहीन एवं खुली हुई दिखाई गई है और दूसरी ढकी हुई, वस्त्र से छिपी हुई। यही नहीं, कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ हैं जिनमें दोनों छातियाँ खुली हुई हैं और उनके बीच से एक विभाजक रेखा जाती है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पिछले प्रकार की प्रतिमाओं में विभाजक रेखा यज्ञोपवीत का प्रदर्शन करने के लिए है और पहले प्रकार की मूर्तियों में वही रेखा वस्त्र के किनारे को सूचित करने के लिए। यह बात

हमारे उक्त विचार का बहुत-कुछ समर्थन करती है।

फिर भी एक पुष्ट प्रमाण और है। वह है जैनों के एक महत्व-पूर्ण ग्रंथ का साक्ष्य इस ग्रंथ का नाम तीर्थमाला-स्तवन है। इस में एक पद्य दिया हुआ है, (यह आगे उद्धृत किया गया है) जो लगभग १६०० ई० में बुद्धगया की यात्रा करनेवाले जैन-साधु सौभाग्य-विजय का बनाया हुआ है। उसमें वे लिखते हैं कि बुद्ध की मूर्ति के कंठ में जनोइ (यज्ञोपवीत) का चिह्न है और इस प्रकार की वहाँ पर अगणित मूर्तियाँ हैं। वे यह भी लिखते हैं कि बौद्ध-मूर्तियों का जनोइ-चिह्न ही उन्हें जैन-मूर्तियों से पृथक करता है।

आनुषंगिक स्थल

ऊपर का चित्र बुद्ध की बराबुदुरवाली मूर्ति की प्रतिलिपि है। इस प्रकार की मूर्तियाँ बराबुदुर (जावा); बटाविया म्यूजियम, जावा; तथा लीडन म्यूजियम हालैंड में देखी जा सकती हैं।

उक्त मूर्तियों के फोटो के लिए देखो कार्लविथ का Java, चित्र ३२, ३३, ६७, ९५। यज्ञोपवीत और वस्त्र के किनारे दोनों को सूचित करनेवाली दो विभाजक रेखाओं से युक्त मूर्तियों के लिए देखो वही ग्रंथ, चित्र ३२। ऐसी मूर्ति के लिए, जिसमें एक छाती खुली हुई और दूसरी वस्त्र से ढकी हुई है, देखो वही ग्रंथ, चित्र ६४।

मूलवचन

बुद्ध के यज्ञोपवीत-धारण के लिए :—

तिहाँथी बोधगया कोस त्रण छे रे।
प्रतिमा बोधतणो नहिं पार रे॥
जिनमुद्राथी विपरीत जाणजे रे।
कण्ठ जनोइनो आकार रे॥

—तीर्थमाला-स्तवन अध्याय २०, पद्य २ से ५। जैनसाधु सौभाग्य-विजयकृत। इन्होंने १६०० ई० के लगभग बुद्धगया की यात्रा की थी।

हिंदुओं के यज्ञोपवीत-धारण करने के लिए :—

कार्पासक्षौमगोवालशररज्जुतृणोद्भवम्।
सदा सम्भवतो धार्य्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥

—देवलस्मृति, यज्ञसूत्रम् में।

निम्नांकित उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि रामायण के प्रसिद्ध वीर हनूमान यज्ञोपवीत धारण करते थे :—

"मौञ्जीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखं शोभितं कुण्डलाङ्कम्।
...हनुमन्तं विचिन्तयेत्।"

पुनश्च—

"दुकूलवसनं यज्ञोपवीताजिनम्।...श्रीवायुपुत्रं भजेत्।"

—वाल्मीकिकृत आनंद-रामायण के मनोहरकांड के तेरहवें सर्ग में। ब्रह्मांडपुराण और सुदर्शनसंहिता-तंत्र के हनुमत्कवचम् वाले अध्याय में भी (प्रत्येक में यज्ञोपवीत का दो बार उल्लेख है)।

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

(विशेषतः उन विषयों की जो एक से अधिक स्थानों पर आए हैं)

[अंक पृष्ठों के हैं और (टि) पाद-टिप्पणी के लिए]

अ

आ

इ

ई

उ

ऋ

ओ

क

घ

च

ज

त

थ

द

ध

म

र

ल

व

श

ह

मूल पुस्तक पर कुछ चुनी हुई संमतियाँ

(हिंदी-अनुवाद)

भारत के वायसराय और गवर्नर जेनरल हिज एक्सेलेंसी दी हाई ऑनरेबुल रुफुस डैनियल इसाक्स, अर्ल आफ् रीडिंग, पी. सी., जी. सी. बी., जी. एस. एस. आई., जी. एम. आई. ई., जी. सी. भी. ओ. द्वारा प्राप्त एक पत्र का अंश :—

डी. ओ. नं. १०१६—सी.

प्राइवेट सेक्रेटरी आफिस — वायसराय-कैंप, भारत

श्रीयोगिराज-शिष्य मैत्रेय,

प्रिय महाशय,

'बुद्ध-मीमांसा' की एक प्रति मिली। मैं इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने पुस्तक को हिज एक्सेलेंसी वायसराय महोदय के समक्ष रखा। वायसराय महोदय ने इसको बड़ी रुचि के साथ पढ़ा।

भवदीय—

सी. पी. हैंकॉक।

गया जिले के सुयोग्य एवं संमाननीय मजिस्ट्रेट डब्ल्यू. बी. ब्रेट महोदय, आई. सी. एस. की संमति :—

मैंने 'Buddha and his Relation to the Religion of the Vedas' (बुद्ध और उनका वैदिक धर्म से संबंध) नामक पुस्तक बड़ी रुचि के साथ पढ़ी।

—(हस्ताक्षर) डब्ल्यू. बी. ग्रेट।

बुद्धगया के योगिराज के पास आए हुए बनारस-राज्य, किला रामनगर के चीफ सेक्रेटरी के एक पत्र का अंश :—

हिज हाईनेस महाराज 'बुद्ध-मीमांसा' पढ़कर प्रसन्न हुए और उन्हें यह बड़ी सुरुचिपूर्ण ज्ञात हुई। 'भारत से बुद्ध-पूजन का लोप किस प्रकार हुआ' इस विषय पर लिखा हुआ अध्याय बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

स्टेट-कौंसिल, जम्मू और कश्मीर के हाईकोर्ट के जज के एक पत्र का अंश:—

मैंने 'बुद्ध-मीमांसा' को ध्यान से देखा और इसे अत्यंत रोचक और शिक्षाप्रद पाया। इस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य यह है कि हिंदुओं और बौद्धों के बीच चिरकाल से जो पार्थक्य चला आ रहा है वह मिट जाय और इन दोनों पक्षों के बीच शांतिपूर्ण सहयोग की स्थापना हो। इसमें वैदिक और बौद्ध-साहित्य की विस्तृत परंपरा का अन्वेषण किया गया है और उसका निरूपण भी पुस्तक में अच्छी तरह से हुआ है। मेरे विचार से यह पुस्तक हिंदू-धर्म से बौद्धधर्म के संबंध का निरूपण करनेवाली एक मूल्यवान और मनोहर रचना है। सभी पब्लिक और स्टेट लाइब्रेरियों में इसकी एक प्रति रखने योग्य है।